उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

व्यावहारिक सामाजिक मनोविज्ञान(एमएपीएसवाई -513)

(Applied Social Psychology MAPSY-513

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
	खण्ड 1: सामाजिक व्यवहार के नियम (Principles of Social Behavior)	
इकाई- 1	सामाजिक व्यवहार का अवबोधन-अनुकरण, सुझाव एवं सहानुभूति (Understanding of Social Behavior- Imitation, Suggestion and Sympathy)	1- 19
इकाई -2	सामाजिक मनोविज्ञान का स्वरूप, विषय-क्षेत्र एवं सार्थकता (Nature, Scope and Significance of Social Psychology)	20- 28
इकाई -3	सामाजिक व्यवहार की अध्ययन विधियाँ- अवलोकन, सर्वेक्षण, व्यक्ति अध्ययन, समाजमिति एवं प्रयोगात्मक (Approaches of Social Behavior:- Observation, Survey, Case study, Sociometry and Experimental)	29- 51
	खण्ड 2: अभिवृत्ति एवं उसका मापन (Attitude and its Measurement)	
इकाई -4	अभिवृत्ति का अर्थ, स्वरूप एवं अवयव (Meaning, Nature and Components of Attitude)	52- 64
इकाई -5	अभिवृत्ति का विकास एवं उसका मापन (Development of attitude and its Measurement)	65- 79

इकाई -6	अभिवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त एवं कारक (Theories and Factors of Attitude Change)	80- 95
	खण्ड 4: समूह गतिकी (Group Dynamics)	
इकाई -7	समूह का अर्थ, प्रकार, संरचना एवं कार्य (Meaning, Types, Structure and Functions of Group)	96-120
इकाई- 8	समूह प्रभावकता व समूह समग्रता:- आशय एवं निर्धारक तत्व (Group Effectiveness and Group Cohesiveness:- Meaning and Determinates)	121-135
इकाई- 9	सामाजिक सरलीकरण, जन-संकलन, सामाजिक श्रमावनयन, अवैयक्तिकरण (Social Facilitation, Crowding, Social Loafing, Deindividualization)	136-151

इकाई-1 सामाजिक व्यवहार का अवबोधन-अनुकरण, सुझाव, सहानुभूति
(Understanding of Social Behavior- Imitation, Suggestion and Sympathy)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अनुकरण
 1.3.1 सामाजिक व्यवहार के विकास में अनुकरण का महत्व
 1.3.2 अनुकरण के प्रकार
 1.3.3 अनुकरण के सिद्धान्त
 1.3.4 सामाजिक जीवन में अनुकरण का महत्व
1.4 सुझाव
 1.4.1 सुझाव का वर्गीकरण
 1.4.2 सुझाव को प्रभावकारी बनाने के लिए कुछ आवश्यक परिस्थितियां
 1.4.3 सामाजिक जीवन मे सुझाव का महत्व
1.5 सहानुभूति
 1.5.1 सहानुभूति के प्रकार
 1.5.2 सहानुभूति उत्पन्न करने वाले कारक या परिस्थितियां
 1.5.3 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्व
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्यक्ति को सामाजिक प्राणी होने के कारण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न तरह का सामाजिक व्यवहार करना पड़ताहै इन सामाजिकव्यवहारों को समझने के लिए समाज मनोवैज्ञानिको ने कुछ नियमों का प्रतिपादन

किया है। इन नियमों के आधार पर ही सामाजिक अन्तःक्रिया होती है और हमारे सामाजिक व्यवहार का विकास होता है।

प्राणी के सामाजिक व्यवहार को समझने के लिए मैक्डुगल ने चौदह विशिष्ट मूल प्रवृत्तियों के वर्णन के साथ-साथ कुछ सामान्य प्रवृत्तियों का वर्णन भी किया है। जिनमें अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति भी है। जिन्हें छदम मूल प्रवृत्तियां कहा है। मैक्डूगल के अनुसार छद्म मूल प्रवृत्तियां बाहय रूप से मूल प्रवृत्तियां न होते हुए भी मूल प्रवृत्तियां हैं जो जन्मजात न होकर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं हैं। व्यक्ति की क्रियाओं तथा मानसिक स्थितियों का दूसरे व्यक्ति की क्रियाओं और मानसिक स्थितियों के साथ समायोजन स्थापित होने के कारण यह तीनो सामाजीकरण की प्रक्रिया एक ही है। सामाजिक समायोजन का ज्ञानात्मक पक्ष सुझाव, भावात्मक पक्ष सहानुभूति तथा क्रियात्मक पक्ष अनुकरण हैं सुझाव, सहानुभूति तथा अनुकरण यह तीनों ही एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। इन तीनो में से प्रत्येक की प्रक्रिया में दो या दो व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया अवश्य होती है।

मैकडुगल (1919) के अनुसार प्राणी के सामाजिक व्यवहार को निम्न 3 मूल प्रवृत्तियों के आधार पर समझा जा सकता है:-

1- अनुकरण (Imitation)
2- सुझाव (Suggestion)
3- सहानुभूति (Sympathy)

इस अध्याय में हम इनके बारे में विस्तार से समझेंगे और यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि ये प्रक्रियाएं किस प्रकार हमारे सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

1.2उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक व्यवहार के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- अनुकरण तथा इसकी प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- सुझाव के बारे में पढ़ने का अवसर प्राप्त करेंगे।
- सहानुभूति की महत्वपूर्ण प्रक्रिया के बारे में जानने का मौका मिलेगा।

1.3 अनुकरण

अनुकरण का अर्थ एवं स्वरूप:

अनुकरण की प्रक्रिया सभी प्राणियों, पशु, पक्षियों के दैनिक जीवन में पाई जाती है। बंदरो में अनुकरण की योग्यताओं से तो हम भली भांति परिचित होंगे ही। यह देखा जाता है कि पशु, पक्षी भी अपने बच्चों को अनुकरण के लिये प्रेरित करते हैं।

परिभाषाएँ :

समाज मनोविज्ञानिकों ने अनुकरण की निम्न परिभाषाएँ दी हैं:-

मैकडुगल के अनुसार:-

''एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के क्रियाकलाप और शरीर संचालन की नकल मात्र को अनुकरण कहते हैं।''

लिन्टन के अनुसार:-

''अनुकरण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहारों की नकल करने से है, चाहे नकल करने वाले व्यक्ति को उस व्यवहार की जानकारी प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा या किसी दूसरे द्वारा सुनकर या अधिक प्रगतिशील समाज में पढ़कर मिली हो।''

इन विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें यह स्पष्ट होता है कि अनुकरण की प्रक्रिया में निम्न तीन विशेषताएं पाई जाती हैं:-

1. अनुकरण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार या शारीरिक क्रियाओं का होना अनिवार्य है।
2. व्यवहार या शारीरिक क्रियाएं ऐसी हो जिसे अनुकरण करने वाला व्यक्ति अधिक महत्व देता हो अगर व्यक्ति के लिए वह व्यवहार या शारीरिक क्रिया अधिक महत्वपूर्ण नही होगी तो व्यक्ति उसका अनुकरण नही करेगा।
3. व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण चेतन तथा अचेतन दोनों ढंगो से करता है। जब अनुकरण चेतन ढंग से या जानबूझकर किया जाता है तो उसे नकल कहा जाता है और जब अनुकरण अनजाने में या अचेतन ढंग से किया जाता है तो उसे समेल निर्भरता कहा जाता है। इस प्रकार समाज मनोवैज्ञानिकों ने अनुकरण की प्रक्रिया को चेतन तथा अचेतन स्तर पर होने वाली प्रक्रिया माना है।

1.3.1 सामाजिक व्यवहार के विकास में अनुकरण का महत्व (Importance of Imitation in development of Social Behaviour)-

अनुकरण की प्रक्रिया सामाजिक और नैतिक व्यवहार के विकास में बहुत महत्वपूर्ण है। हम व्यवहार के आदर्श प्रतिमान, रीतिरिवाज और नैतिकता को अपने बुजुर्गों से सीखते हैं इस प्रकार हम अपनी भाषा, संस्कृति और सभ्यता को भी अनुकरण के माध्यम से सीख पाते हैं। यदि यह अनुकरण की प्रक्रिया न होती तो आज हमारे लिए

अपने वर्तमान स्थिति तक पहुंच पाना कठिन हो जाता। हम अपने जीवन की महत्वपूर्ण योग्यताएं तथा कलाएं जैसे साइकिल चलाना, घुड़सवारी करना, तैरना तथा कुशल वक्ता बनना आदि भी इसी अनुकरण से ही सीख पाते हैं। हमें अनुकरण के माध्यम से ही अपने पहनावे जैसे किसी चलचित्र में नायक-नायिका के पहनावे से फैशन को हजारों व्यक्ति अनुकरण करते हैं।

जेम्स ने सामाजिक जीवन में अनुकरण के महत्व के बारे में कहा है "मानव प्रगति अविष्कार तथा अनुकरण की टांगो की सहायता से पूर्ण रूप से चलती रहती है।" (The human race has all along been walking with the help of two legs of invention and Imitation).

इस प्रकार ड्रेबर तथा मैक्डूगल ने अनुकरण को सीखने का आधार माना है। यद्यपि अनुकरण का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकरण का महत्व अलग-अलग होता है। एक व्यक्ति के लिए एक अनुकरण महत्वपूर्ण हो सकता है जबकि वैसा ही अनुकरण दूसरे व्यक्ति के लिए भी महत्वपूर्ण हो ऐसा आवश्यक नहीं है तथापि सामाजिक व्यवहार को सीखने तथा समझने के लिए अनुकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

1.3.2 अनुकरण के प्रकार-

- मैकडुगल ने अनुकरण के पांच प्रकार बतलाये हैं जिसमें प्रथम तीन को मुख्य अनुकरण तथा अन्तिम दो को गौण अनुकरण कहा है:-

A. **मुख्य अनुकरण**(Main Imitation)- मुख्य अनुकरण निम्न प्रकार के होते हैं -

1. सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण (Sympathetic Imitation)- इस तरह के अनुकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर अचेतन रूप से करता है। प्रायः यह देखा गया है कि एक बच्चा दूसरे बच्चे को रोते देखकर स्वंय भी रोने लगता है तथा एक बच्चा अपने मां या पिता को रोते देखकर सहानुभूतिवश स्वंय भी रोने लगता है। ये सभी अनुकरण सहाभूतिपूर्ण अनुकरण के उदाहरण हैं। सहानुभूति पूर्ण अनुकरण बच्चों और स्त्रियो में ज्यादा देखने को मिलता हैं।

2. विचार चालक अनुकरण (Ido-Motor Imitation)-यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सामान्य अनुकरण है। जब कोई व्यक्ति अपनी क्रियाओं द्वारा दूसरों के मस्तिष्क में इस प्रकार का विचार उत्पन्न कर देता है कि वह व्यक्ति भी उसी प्रकार की क्रियाएं करना आरम्भ कर देता है। तो इसे विचार चालक अनुकरण की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण, जब स्टेज पर किसी नर्तकी को झूम-झूमकर नाचते देखकर दर्शक भी अपने हाथ-पैर तथा सिर को नृत्य भंगिमा में हिलाना प्रारम्भ कर देते हैं तो इसे हम विचार चालक अनुकरण की संज्ञा देते हैं।

3. ऐच्छिक अनुकरण (Deliberate Imitation)-इस अनुकरण में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को आदर्श मानकर ऐच्छिक रूप से उनका अनुकरण करता है। ऐसा देखा गया है कि बहुत से युवक या युवतियां अपने

मनपसंद फिल्मी कलाकारों के व्यवहारों, मुद्राओं एवं उनके भिन्न-भिन्न तरह की शैलियों को आदर्श मानकर स्वंय वैसा ही व्यवहार या मुद्रा या शैली अपना लेते हैं। ये सभी आत्मसचेत अनुकरण के उदाहरण हैं।

B. गौण अनुकरण (Secondary Imitation):- इसके निम्नलिखित प्रकार होते हैं -

1) विचार चालक सचेत अनुकरण-मैकडुगल के अनुसार यह एक प्रकार का गौण अनुकरण है जिसमें ऊपर वर्णन किये गये अन्तिम दोनों अनुकरण यानी विचार चालक अनुकरण तथा ऐच्छिक अनुकरण का मिश्रण देखने को मिलता है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है तो उसके मस्तिष्क पर उस क्रिया की एक गहरी छाप पड़ती है। इस प्रकार का अनुकरण प्रायः बच्चों और कम तर्क योग्यताओं वाले युवकों में मिलता है।
2) अनुपयोगी अनुकरण- इस तरह का अनुकरण बिना सोच-समझे किया जाता है ऐसे अनुकरण द्वारा व्यक्ति में न तो किसी तरह का संवेग और न ही किसी तरह के भाव की ही अभिव्यक्ति होती है। यह अनुकरण हमें मूर्खों और युद्ध बंदियों में देखने को मिल सकता है।

- गिन्सवर्ग ने अनुकरण को तीन भागों में बांटा है:-

1. जैविक अनुकरण-जैविक समानता के कारण कुछ जीवों में दूसरे के व्यवहारों का अनुकरण अचेतन रूप से मूलप्रवृत्यात्मक स्तर पर होता है। उदाहरण, पक्षियों में उड़ने की मूलप्रवृत्ति है और इसके लिए जैविक समानता जैसे - पंख, डैना आदि भी उनमें होते हैं। इस मूलप्रवृत्ति एवं जैविक समानता के कारण ही एक पक्षी के लिए दूसरे पक्षी को उड़ता देखकर इस क्रिया की नकल करना संभव हो पाता है।
2. विचार चालक अनुकरण-इस प्रकार के अनुकरण की चर्चा मैकडुगल द्वारा किये गये अनुकरण के प्रकार के अन्तर्गत समानता लिए होने के कारण की जा चुकी है।
3. विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण-जब व्यक्ति किसी उद्देश्य को लेकर एवं सोच समझकर किसी दूसरे के व्यवहार का अनुकरण करता है तो इसे विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण कहा जाता है। इस तरह का अनुकरण मैकडुगल द्वारा बताये गये आत्म-सचेत अनुकरण के ही समान है। इसके एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है। मेडिकल कालेज में एक विद्यार्थी सफल डाक्टर बनने के उद्देश्य से बड़े डाक्टरो के (जो उनके शिक्षक भी होते हैं) व्यवहारों का अनुकरण करता हैं इस तरह का अनुकरण विवेकी या उद्देश्यपूर्ण अनुकरण का उदाहरण है।

- जेम्स ड्रेवर के अनुसार अनुकरण को चार भागो में बांटा गया है:-

1. अचेतन अनुकरण-अचेतन अनुकरण, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ऐसे अनुकरण को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति जान बूझकर नही, बल्कि अचेतन रूप से दूसरों के व्यवहारों की नकल करता है। एक बच्चा प्रायः अपने से बड़ो के कुछ व्यवहारों का अचेतन रूप से अनुकरण करता हैं वह समाज की रीति-रिवाजो का भी अनुकरण इसी अचेतन रूप से करता है।

2. प्रत्यक्षात्मक अनुकरण-इस तरह के अनुकरण में अनुकरण करने वाला व्यक्ति तथा जिस व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण किया जा रहा है। वे दोनों ही आमने-सामने होते हैं। दूसरे दूसरों में यह कहा जा सकता है कि अनुकरण करने वाले व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों का अनुकरण उसकी मौजूदगी में ही करता है। जैसे, प्रायः देखा जाता है कि स्कूल या कालेज के किसी समारोह में छात्र शिक्षको की उपस्थिति में ही किसी विशेष शिक्षक (जो उस समारोह में मौजूद होते हैं) के बोलने तथा व्यवहार करने की नकल प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर देते हैं। यहां अनुकरण करने वाला छात्र तथा वह शिक्षक जिसमें व्यवहार का अनुकरण किया जा रहा है, दोनों ही प्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहते हैं।
3. अनुकरण काल्पनिक अनुकरण-काल्पनिक अनुकरण में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या घटना का अनुकरण उसकी मौजूदगी में नही बल्कि अनुपस्थिति में ही करता है। अधिकतर अनुकरण काल्पनिक अनुकरण ही होते हैं क्योंकि अनुकरण किया जाने वाला व्यक्ति साधारणतया अनुपस्थित ही रहता है।
4. विचारपूर्ण अनुकरण-जब अपनी इच्छानुसार व्यक्ति दूसरों के व्यवहारो की नकल करता है तो उसे विचारपूर्ण अनुकरण कहा जाता है। इस तरह का अनुकरण पूर्ण रूपेण चेतन होता है। जैसे कोई छात्र अपने शिक्षक के आदर्श व्यवहारों का नियमपूर्वक नकल कर अनुकरण करता है तो ऐसे अनुकरण की श्रेणी में रखा जायेगा।

1.3.3 अनुकरण के सिद्धान्त (Theories of Imitation)-

समाज मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने अनुकरण को वैज्ञानिक ढंग से समझने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत बतलाए हैं:-

i) बेगहॉट का सिद्धांत
ii) टार्ड का सिद्धांत
iii) अनुकरण का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत
iv) अनुकरण का सामाजिक सिद्धांत

i) **बेगहॉट का सिद्धांत**(Theory of Bagehot)-इस सिद्धांत के अनुसार अनुकरण करने की प्रवृत्ति व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद होती है। इसका मतलब यह हुआ कि इन्होंने अनुकरण को एक मूलप्रवृत्ति की श्रेणी में रखा है। इस तरह के अनुकरण के बारे में बेगहॉट का विचार बहुत कुछ मैकडुगल के विचार से मिलता जुलता है। क्योंकि मैकडुगल ने भी अनुकरण की प्रक्रिया को एक जन्मजात प्रक्रिया कहा है। इन्होंने यह भी कहा है कि बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। क्योंकि बच्चे मूलप्रवृत्ति द्वारा अधिक नियंत्रित होते हैं परन्तु वयस्कों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति बच्चों की अपेक्षा कम होती है क्योंकि इनके मूल स्वभाव पर सामाजिक सीखने का प्रभाव अधिक होता है। इन्होंने यह भी कहा है कि जनजाति के व्यक्तियो में सभ्य जाति के व्यक्ति की अपेक्षा अनुकरण करने की क्षमता अधिक होती है।

क्योंकि इन व्यक्तियों का व्यवहार मूलप्रवृत्ति द्वारा ही अधिक नियंत्रित होता है तथा साथ ही साथ इनके स्वभाव पर विकास का प्रभाव कम पाया जाता है।

ii) **टार्ड का सिद्धांत**(Theory of Tarde)-टार्ड ने भी अपने सिद्धांत में अनुकरण को एक मूलप्रवृत्ति ही कहा है। परन्तु साथ ही साथ इसमें अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के भी महत्व को कुछ हद तक उन्होंने स्वीकार किया है। उन्होंने अनुकरण को इतना प्रभावकारी बतलाया है कि इनके बिना समाज का अस्तित्व संभव नही है। उनके अनुसार सचमुच में पूरा समाज ही एक साकार अनुकरण है।

टार्ड के अनुसार किसी समाज का विकास उनके सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं पर निर्भर करता है। इन अन्तःक्रियाओं के मुख्य तीन रूप होते हैं - पुनरावृत्ति, विरोधी और अनुकूलन। इन तीनो तरह की प्रक्रियाओं में से प्रत्येक के तीन स्वरूप होते हैं- भौतिक स्वरूप, प्राणीशास्त्रीय स्वरूप तथा सामाजिक स्वरूप। टार्ड ने अनुकरण की व्याख्या करने के लिए पुनरावृत्ति के इन तीनों स्वरूपों की चर्चा को ही पर्याप्त माना है उनके अनुसार पुनरावृत्ति के तीन स्वरूप इस प्रकार होंगे - भौतिक पुनरावृत्ति, प्राणी शास्त्रीय पुनरावृत्ति तथा सामाजिक पुनरावृत्ति। हवा के माध्यम से हम प्रतिध्वनि सुनते है, यह भौतिक पुनरावृत्ति का उदाहरण है। अपने पुत्र या पुत्रियों में माता-पिता के गुणों एवं लक्षणो का दिखाई देना प्राणीशास्त्रीय पुनरावृत्ति का उदाहरण है। किसी एक व्यक्ति के व्यवहार एवं गुणों को दूसरे व्यक्ति द्वारा उसी रूप में दोहराया जाना सामाजिक पुनरावृत्ति का उदाहरण है।

टार्ड ने उन सामाजिक आर्थिक कारकों पर भी प्रकाश डाला है जिनसे प्रेरित होकर व्यक्ति नये-नये विचारों एवं रीति रिवाजो का अनुकरण करता है।

iii) **अनुकरण का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत**(Psychological Theory of Imitation)-हाल्ट तथा आलपोर्ट ने अनुकरण की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। हाल्ट के अनुसार अनुकरण की व्याख्या सहज चक्र सिद्धांत के आधार पर आसानी से की जा सकती है। इनका कहना है कि अनुकरण की प्रक्रिया का आधार स्नायुमण्डल होता है। जब व्यक्ति किसी दूसरे के व्यवहार को देखता है या उसके बारे में सुनता है या उसके बारे में पढ़ता है तो उसे एक वाहय उत्तेजना प्राप्त होता हैं और उस उद्दीपन से स्नायुमण्डल में एक सहज क्रिया उत्पन्न होती हैं इस सहज क्रिया द्वारा पुनः उस उत्तेजना की पुनरावृत्ति होती है और यही पुनरावृत्ति अनुकरण का आधार होती है।

आलपोर्ट का विचार हाल्ट के विचार से काफी मिलता-जुलता है इन्होंनेने भी अनुकरण की व्याख्या करने के लिए सहज क्रिया का सहारा लिया है। इन्होंने अनुकरण की व्याख्या पूर्व प्रबल सहज सिद्धांत के आधार पर की है। आलपोर्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में सुनने एवं बोलने की इन्द्रियां एक दूसरे से इस तरह से संबंधित होकर पूर्व प्रबल बन जाती हैं कि व्यक्ति को कोई देखी हुई घटना एवं सुनी हुई बात का अनुकरण करने में काफी आसानी होती है।

iv) **अनुकरण का सामाजिक सिद्धांत**(Psychological Theory of Imitation)-थौर्नडाइक, लापियरी, कूली जॉन डीवी आदि मनोवैज्ञानिकों ने अनुकरण का सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि अनुकरण की आदत अन्य सभी आदतो के समान ही विकसित होती है। इसके निर्माण एवं विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का अधिक महत्व होता है। इन लोगों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्ति उन व्यवहारों एवं क्रियाओं का अनुकरण तेजी से करता है जिन्हें अपनाने पर समाज द्वारा उसे पुरूस्कार मिलता है एवं समाज के लोग उसकी प्रशंसा करते है। जैसे- जब कोई बच्चा दूसरे बच्चे को अपने बड़े के पैर छूकर प्रणाम करते देखता है और फिर वह भी वैसा ही करता है तो इससे लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इस तरह की प्रशंसा का एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस बच्चे पर पड़ता है और इसमें अनुकरण की प्रक्रिया और भी सुदृढ़ हो जाती है। वही दूसरी तरफ व्यक्ति उन क्रियाओं एवं व्यवहारों का अनुकरण नही करता है जो सामाजिक तिरस्कार एवं घृणा लिये हुए होते हैं।

1.3.4 सामाजिक जीवन में अनुकरण का महत्व

अनुकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी हमारे सामाजिक एवं नैतिक विकास में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। अनुकरण का व्यक्ति के विकास के महत्वपूर्ण चरणों में बड़ा महत्व है:-

1. **सीखने की प्रक्रिया में:-**इसका हमारे जीवन में बहुत महत्व है। मानव को सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे भिन्न तरह के समाजिक व्यवहारों एवं वैयक्तित्क व्यवहारों को सीखना आवश्यक हो जाता हैं। अनुकरण की प्रक्रिया इसमें काफी मदद करती है। एक बच्चा घर में अपने माता पिता एवं भाई बहनो के व्यवहारों के अनुकूल व्यवहार करना अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सीख लेता है।
2. **भाषा विकास में:-**अनुकरण की प्रक्रिया का भाषा विकास में काफी महत्व है। बच्चे जब भाषा सीखने की अवस्था में होते हैं तो वे अपने से बड़े बच्चों की भाषा का अनुकरण तेजी से करके उसे सीख लेते हैं। इस प्रकार बच्चे भाषा को अनुकरण की प्रक्रिया सीख लेते हैं।
3. **व्यक्तित्व के विकास में**:-व्यक्तित्व के विकास में भी अनुकरण की भूमिका काफी है। जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्तित्व शीलगुणों, आदतो, विचारों, भावनाओं आदि का एक गत्यात्मक संगठन होता है। व्यक्तित्व के इन सभी तत्वो के निर्माण में अनुकरण की भूमिका अद्वितीय है। एक छोटा बच्चा अन्य बच्चों को मिल-जुलकर खेलते देखकर उसके व्यवहारों का अनुकरण करता है।
4. **समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व को बनाये रखने में**:-अनुकरण द्वारा समाज एवं संस्कृति के मानदण्डो, तौर तरीको आदि को आसानी से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बनाये रखा जाता है। दूसरे शब्दों में, अनुकरण द्वारा ही समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व को सही मायने में एक पीढ़ी तक कायम रखा जाता है।

5. **सामाजिक एकरूपता एवं संगठन को जन्म देने में**:-अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक एकरूपता एवं संगठन को कायम रखने में काफी मदद मिलती है। अनुकरण द्वारा ही सामाजिक जीवन के प्रमुख व्यवहार, विचार, आदर्श एवं रीति-रिवाज काफी तेजी से समाज के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में फैल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन व्यवहारों, आदर्शों एवं विचारों के प्रति समाज के सभी वर्गो के लोगों की अनुक्रिया करीब-करीब एक समान होती है। इससे सामाजिक एकरूपता उत्पन्न होती है।
6. **आवश्कताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करने में:-**व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं इच्छाओ की पूर्ति करने में भी अनुकरण का महत्वपूर्ण हाथ है जैसे जो व्यक्ति एक बड़ा कलाकार बनने की इच्छा रखता है। वह नामी कलाकारों के कार्यों एवं व्यवहारों पर अत्यधिक ध्यान देकर उनके उल्लेखनीय व्यवहारों और कार्यों का अनुकरण करता है। इस अनुकरण का यह परिणाम होता है कि उसकी कुशलता धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। इस प्रकार सामाजिक व्यवहारों एवं सांस्कृतिक मानदण्डों का सही अनुकरण करके हमारा सम्पूर्ण विकास हो सकता है।

1.4 सुझाव

परिभाषाएँ :-

मनोवैज्ञानिकों ने सुझाव की परिभाषा अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत की है:-

मैकडुगल के अनुसार:-

''सुझाव संचार या संप्रेषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप एक व्यक्ति द्वारा दी गयी राय उपयुक्त तार्किक आधार के बिना ही दूसरों के द्वारा विश्वास के साथ स्वीकार की जाती है।''

किम्बल यंग के अनुसार:-

''सुझाव, शब्दों, चित्रों या ऐसे ही किसी अन्य माध्यम द्वारा किये गये प्रतीक संचार का एक ऐसा स्वरूप है जिसका उद्देश्य उस प्रतीक को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना होता है।''

थाउलेस के अनुसार:-

''सुझाव शब्द का प्रयोग अब साधारणतः उस प्रक्रिया के लिए किया जाता है। जिसमें विचार, विशेष के प्रति मनोवृत्ति विवेकपूर्ण अनुमान्य को छोड़कर अन्य माध्यम से एक व्यक्ति द्वारा दूसरे तक संचारित की जाती है।''

- परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर सुझाव की प्रक्रिया के बारे में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं।

1. सुझाव के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं और दोनों ही सक्रिय एवं सचेत होते हैं। एक पक्ष सुझाव देने वाला होता है तथा दूसरा पक्ष सुझाव ग्रहण करने वाला व्यक्ति होता है।

2. सुझाव की प्रक्रिया में जिस व्यक्ति को सुझाव दिया जाता है, वह बिना तर्क, शंका तथा अलोचना के ही, दिये गये विचारों को स्वीकार कर लेता है। इस तथ्य पर मैकडुगल, थाउलेस आदि ने बल डाला है।

1.4.1 सुझाव का वर्गीकरण

समाज मनोवैज्ञानिको ने सुझावों को पांच भागों में बांटा है:-

1. **विचार चालक सुझाव**(Ido-motor Suggestion)-विचार चालक सुझाव मस्तिष्क के ज्ञान-स्नायुओं में शुरू होता है तथा सुझाव ग्रहण करने वाला व्यक्ति इसे अचेतन रूप से स्वीकार करता है । वास्तव में इस ढंग का सुझाव बहुत हद तक विचार चालक अनुकरण के समान होता है विचार एवं भावना के द्वारा ही इस तरह का सुझाव एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संचारित होता है। प्रायः यह देखा गया है कि नर्तकी को मनपसंद संगीत के साथ नाचते देखकर कुछ व्यक्ति अपने पास की जमीन थपथपाना शुरू कर देते हैं। देखने वाला व्यक्ति यहां नर्तकी में भिन्न-भिन्न मुद्राओं से एक तरह का विचार या भावना प्राप्त कर रहा होता है।
2. **प्रतिष्ठा सुझाव**(Prestige Suggestion)-प्रतिष्ठा सुझाव ऐसे सुझाव को कहा जाता है जो किसी प्रतिष्ठित या सम्मानित व्यक्ति के द्वारा दूसरों को दिया जाता है। चूंकि ऐसे व्यक्तियो को साधारण व्यक्ति इज्जत एवं श्रद्धाभाव से देखते हैं। इसलिए वे उनके सुझाव को तुरन्त मान लेते हैं। उदाहरणार्थ, मुख्यमंत्री स्वंय ही अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं को यदि कुछ सलाह देते हैं तो कार्यकर्तागण उन्हें तुरन्त मान लेते हैं। क्योंकि वे लोग उन्हें इज्जत एवं श्रद्धा की नजर से देखते हैं।
3. **आत्म सुझाव**(Auto Suggestion)-आत्म सुझाव, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, में व्यक्ति अपने आपको सुझाव देता है। इस तरह के सुझाव में व्यक्ति का मन या आत्मचेतना ही सुझाव देने वाला होता है। उदाहरणार्थ, बहुत दिनो तक अपनी पढ़ाई में लापरवाही बरतने के बाद एक छात्र अपने आपको यह सुझाव देता है, ''अब परीक्षा नजदीक आ गयी है। पढ़ाई में तन-मन से जुट जाओ नही तो परीक्षाफल खराब हो जायेगा'' इस तरह का सुझाव निश्चित रूप से आत्म-सुझाव है। क्योंकि यहां व्यक्ति अपने आपको स्वंय ही सुझाव दे रहा है।
4. **विरोधी सुझाव**(Contra Suggestion)-विरोधी सुझाव में व्यक्ति को जो राय दी जाती है वह ठीक उसका उल्टा करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों का सामान्य मत यह है कि इस प्रकार के सुझाव की ग्रहणशीलता छोटे-छोटे बच्चों एवं कम पढ़ी-लिखी स्त्रियों में अधिक होता है। जैसे - पापा या मम्मी द्वारा जब घर में छोटे बच्चों को यह सलाह दी जाती है कि वह टेलीविजन या क्रीज को न छूये तो वह उसे और भी छूने की कोशिश करता है। उसी तरह किसी कम पढ़ी-लिखी औरत को कोई बात यह समझाते हुए कहा जाता है कि इसे वह अपने तक गोपनीय रखेगी।
5. **सामूहिक सुझाव**(Mass Suggestion)-इस तरह के सुझाव में व्यक्ति को सुझाव कुछ अन्य व्यक्तियों के समूह से प्राप्त होता है। इसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि जिस कार्य को समूह के अधिकतर लोग कर रहे हैं उसे भी वही कार्य करना चाहिए। दूसरे दूसरों में, सामूहिक सुझाव में व्यक्ति पर समूह का प्रभाव काफी पड़ता है और व्यक्ति को समूह का सुझाव स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरण यदि कोई सभ्य आदमी गुंडो-

बदमाशो के समूह से घिर जाता है तो वह भी समूह के निर्देशानुसार कार्य करता है तथा समूह के सुझाव को स्वीकार कर लेता है।

1.4.2 सुझाव को प्रभावकारी बनाने के लिए कुछ आवश्यक परिस्थितियां

समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर विशेष रूप से बल डाला है कि कुछ परिस्थितियां या दशाएं ऐसी होती हैं जो सुझाव को अधिक से अधिक प्रभावकारी बना देती हैं। समाज मनोवैज्ञानिको ने इन परिस्थितियों को दो भागों में बांटा है

1. बाहय परिस्थितियां
2. आन्तरिक परिस्थितियां

1. बाहय परिस्थितियां:-

सुझाव की प्रक्रिया में दो पक्ष होते हैं पहला पक्ष सुझाव देने वाला होता तथा दूसरा सुझाव ग्रहण करने वाला। वाहय परिस्थिति में वे सभी कारक सम्मिलित होते हैं जो निम्न प्रकार हैं:-

i) **बाहय वातावरण**:-बाहय वातावण से तात्पर्य उस वातावरण से होता है जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव दिया जाता है। इस वातावरण में प्रकाश, अंधेरा, सजावट, रंग तथा व्यक्ति के चारों ओर की अन्य वस्तुओं की स्थिति आदि सभी महत्वपूर्ण होते हैं। वाहय वातावरण की ये सभी चीजे सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देती हैं जिससे उसमें सुझाव-ग्रहणशीलता अधिक तेज हो जाती है। उसी तरह से दशको में सुझाव ग्रहणशीलता को बढ़ाने के लिए जादूगर विचित्र प्रकार की पोशाक पहनता है तथा नरकंकाल से लेकर जादुई छड़ी तक को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है ताकि दर्शकों में उत्सुकता बढ़े।

ii) **विश्वासपूर्ण स्तर:-**यदि सुझाव देने वाला व्यक्ति आत्मबल पर भरोसा रखते हुए विश्वासपूर्ण स्तर से सलाह देता है तो दूसरे लोग उसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। विश्वासपूर्ण या विश्वस्त स्तर होने से दूसरा व्यक्ति यही समझता है कि जो कुछ भी कहा जा रहा है वह सत्य तथा उचित है इस तरह से सुझाव देने वाले व्यक्ति का स्वार्थ सिद्ध हो जाता हैं।

iii) **पुनरावृत्ति:-**सुझाव की ग्रहणशीलता पुनरावृत्ति द्वारा भी काफी प्रभावित होती है। यदि एक ही बात को बार-बार कहा जाता है तो सुझाव ग्रहणशीलता करने वाला व्यक्ति उसे सच मानकर स्वीकार कर लेता है तथा सुझाव देने वाले के स्वार्थ की सिद्धि हो जाती है। शायद यही कारण है कि व्यापार-सम्बन्धी विज्ञापनो को रेडियो या टेलीविजन पर बार-बार दिखलाया जाता है या सुनाया जाता है।

iv) **संकट:-**समाज मनोवैज्ञानिको का सामान्य मत यह है कि संकटकालीन परिस्थिति में सुझाव ग्रहणशीलता व्यक्तियो में काफी बढ़ जाती है। ऐसा देखा गया है कि आकस्मिक संकट सुझाव ग्रहणशीलता को काफी बढ़ा देता है। ऐसी परिस्थिति में जो सुझाव व्यक्ति को दिया जाता है उसे तुरन्त

मान लिया जाता है। किसी प्रियजन की मृत्यु, दुर्घटना, बाढ़, भूकम्प, अकस्मात नौकरी से निकाल दिया जाना आदि ये सब संकटकालीन परिस्थिति के उदाहरण हैं।

v) **सुझाव देने वाले की प्रतिष्ठा:-**सुझाव की ग्रहणशीलता सुझाव देने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं इज्जत पर भी निर्भर करती है। सुझाव देने वाले व्यक्ति का प्रतिष्ठा सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति की निगाह में जितनी ही अधिक होगी, उस व्यक्ति का सुझाव उतनी ही तत्परता के साथ स्वीकार किया जायेगा। इसका मात्र कारण यह है कि लोग प्रतिष्ठित व्यक्ति को आदर्श व्यक्ति मानते हैं और यह भी समझते हैं कि ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति कभी गलत या झूठ नही बोलते हैं।

vi) **जनमत:-**साधारणतः जनता के मत को जनमत कहा जाता है। समाज मनोवैज्ञानिको का सामान्य विचार यह है कि जो सुझाव अधिकतर व्यक्तियो की ओर से रखा जाता है। उसे कोई व्यक्ति टाल नही पाता है और वह सुझाव को आसानी से स्वीकार कर लेता है। शायद यही कारण कि आज भी गांव में पंच को परमेश्वर माना जाता है और उसके फैसले, राय, विचार या सुझाव को व्यक्ति चुपचाप स्वीकार कर लेता है जनमत में चूंकि एक जनशक्ति या सामूहिक इच्छा निहित होती है। यही कारण है कि जनमत काफी प्रभावकारी होता है।

2. **आन्तरिक परिस्थितियां:-**सुझाव की ग्रहणशीलता सिर्फ बाह्य परिस्थितियों पर ही नही बल्कि व्यक्ति की आन्तरिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। आन्तरिक परिस्थितियों में सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति का स्वभाव, लिंग, आयु, शारीरिक अवस्था, वृद्धि आदि सम्मिलित होते हैं। जो इस प्रकार हैं:-

i) **आयु:-**व्यक्ति की आयु द्वारा सुझाव ग्रहणशीलता प्रभावित होती है। दूसरे दूसरों में, आयु सुझाव ग्रहणशीलता घटती या बढ़ती है। प्रायः देखा गया है कि बच्चों में सुझाव ग्रहणशीलता अधिक होती है क्योंकि उनकी आयु कम होने से उनमे विवेक एवं अनुभव की कमी होती है। वयस्को में सुझाव ग्रहणशीलता कम होती है। क्योंकि उनके मस्तिष्क की परिपक्वता अधिक होने से उनमें विवेक एवं अनुभव की अधिकता होती है। बुढ़ापे में अधिक उम्र बीत जाने से सामान्यता सुझाव ग्रहणशीलता बढ़ जाती है क्योंकि इस अवस्था में मस्तिष्क कमजोर हो जाने से विवेक शक्ति कम हो जाती है।

ii) **शारीरिक कष्ट:-**विशेष शरीर कष्ट जैसे - भूख, बीमारी, थकान, चोट इत्यादि ऐसी कुछ परिस्थितियां होती है जिनके होने पर व्यक्ति दूसरों के सुझाव को बिना तर्क या शंका के ही स्वीकार कर लेता है। इन शारीरिक कष्टो की स्थिति में व्यक्तियो में तर्क या विवेक की शक्ति कम हो जाती है और उनका ध्यान कष्ट पर तथा उसे दूर करने के उपायों पर केन्द्रित अधिक होता है। शायद यही कारण है कि डाक्टर द्वारा दिये गये सुझाव को रोगी तत्परता से स्वीकार कर लेता है। परन्तु रोग समाप्त होने के बाद, स्वास्थ्य की देख-रेख सम्बन्धी डाक्टर की मामूली राय पर अधिक ध्यान नही देता है।

iii) **लिंग:-**कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा सुझाव ग्रहणशीलता सामान्यतः अधिक होती है। वे दूसरों की बातों को आसनी से सच समझकर स्वीकार कर लेते हैं। इसके दो कारण बतलाये गये हैं पहला तो यह है कि अधिकतर महिलाएं अपना समय घर में ही व्यतीत करती हैं। जिसके फलस्वरूप उन्हें बाहरी दुनिया का ज्ञान अधूरा एवं अल्प होता है। दूसरा यह कि महिलाओं के स्वभाव में परम्परा, धर्म, अन्धविश्वास आदि अधिक होता है। फलतः उनमें विवेकशीलता कम होती है और वे दूसरे की राय को आसानी से स्वीकार कर लेती हैं। परन्तु इस तरह की सुझाव ग्रहणशीलता सभी तरह की स्त्रियो में पुरूषों की अपेक्षा अधिक होगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कुछ महिलाए ऐसी होती है जिनकी आलोचनात्मक क्षमता अधिक विकसित होती है।

iv) **अज्ञानता:-**व्यक्ति की अज्ञानता का भी प्रभाव सुझाव ग्रहणशीलता पर पड़ता है यदि सुझाव किसी ऐसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के बारे में दिया जाता है जिससे व्यक्ति अनभिज्ञ है या जिसके बारे में वह कुछ नही जानता है, तो उसे व्यक्ति तुरन्त स्वीकार कर लेता है। इसका प्रधान कारण यह है कि इस तरह की अज्ञानता व्यक्ति की तर्क शक्ति तथा विवेक शक्ति पर एक तरह का पर्दा डाल देती है। फलस्वरूप, वह किसी सुझाव को तत्परता से बिना किसी छानबीन के ही स्वीकार कर लेती है।

v) **बुद्धि:-**कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अधिक बुद्धि वाले व्यक्ति में तर्क क्षमता तथा विवेकशक्ति भी अधिक होती है। फलस्वरूप उनमे सुझाव ग्रहणशीलता कम होती हैक्योंकि वे किसी सुझाव को तत्परता से स्वीकार नहीं करते हैं। दूसरी तरफ कम बुद्धि वाले व्यक्ति में तर्क तथा विवेक की शक्ति काफी कम होती है, फलतः वे किसी सुझाव को यथावत तुरन्त मान लेते हैं। परन्तु इस तरह के सिद्धान्त की मान्यता अब करीब-करीब समाप्त हो गयी है। आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिको के प्रयोगात्मक सबूतो से यह स्पष्ट हो गया है कि बुद्धि के साथ-साथ और भी कारक होते हैं जो व्यक्ति की सुझाव ग्रहणशीलता को प्रभावित करते हैं। उदाहरण, किसी भीड़ में जब व्यक्ति बहुत से व्यक्तियों को भागते देखता है तो वह भी भागना शुरू कर देता है। चाहे उसकी बुद्धि का स्तर कितना ऊंचा क्यों न हो। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भीड़ मे व्यक्ति दूसरे के व्यवहारों को अधिक तत्परता से स्वीकार करता है।

vi) **मस्तिष्क में असामान्य अवस्था:-**सुझाव ग्रहण करने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति यदि कुछ असामान्य हो तो स्वभावता उसमें तर्क एवं विवेक शक्ति काफी कम हो जाती है और उसे जो कुछ भी कहा जा रहा है वह तत्परता के साथ स्वीकार कर लेता है। मस्तिष्क की असामान्य स्थिति कुछ मानसिक बीमारियों जैसे - मनोस्नायुविकृति, मनोविकृति तथा मदिरा एवं नशीली वस्तुओ के खाने एवं सम्मोहन के वश में होने के कारण उत्पन्न हो जाती है । इन मानसिक अवस्थाओं में सुझावग्रहणशीलता अधिक बढ़ जाती है। क्योंकि उनके मस्तिष्क में विवेकशीलता घट जाती है।

vii) **अनुकूल सुझाव:-**यदि दिया गया सुझाव ऐसा होता है जो ग्रहण करने वाले व्यक्तियो के विचारों, आदर्शो, अभिरूचियों एवं इच्छाओं के अनुकूल है तो उसे स्वीकार करने में व्यक्ति को किसी प्रकार की हिचकिचाहट नही होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति को किसी प्रकार का आन्तरिक द्वन्द या विरोध का सामना नहीं करना पड़ता है। शायद यही कारण है कि यदि किसी प्रकार सन्तानरहित महिला को जिसे भगवान तथा उनके पूजा पाठ में अटूट विश्वास है। सन्तान की प्राप्ति के लिये भगवान की सुबह, दोपहर एवं शाम गंगाजल तथा तुलसी के पत्ते को तांबे के पात्र में रखकर पूजा करने की सलाह दी जाती है तो वह उसे तुरन्त तत्परता के साथ स्वीकार कर लेती है।

1.4.3 सामाजिक जीवन मे सुझाव का महत्व

सुझाव का हमारे सामाजिक जीवन में काफी महत्व है इसकी अवहेलना करना सम्भव नहीं है सुझाव के महत्व को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्या कर सकते हैं:-

1) **सुझाव से सामाजिक एकता होती है:-**सुझाव से सामाजिक एकता आती है। सुझाव कई तरह के होते हैं जिनमें से सामाजिक सुझाव द्वारा सामाजिक एकता अधिक आती है। सामाजिक सुझाव एक ऐसा सुझाव है जिसमें व्यक्ति अधिकतर व्यक्तियों के व्यवहारों के अनुकूल अपना व्यवहार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब व्यक्ति अन्य लोगों के करीब आता है। तो इससे उनमें अपने आप ही एक तरह की सामाजिक एकता या समानता आती है। सामाजिक सुझाव हमें समूह से प्राप्त होते हैं।
2) **सुझाव व्यक्ति के समाजीकरण में मदद करता है:-**सुझाव द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण भी होता है। बच्चों को अपने भाइयों, बहनों, माता-पिता, शिक्षक आदि से निर्देश के रूप में बहुत तरह के सुझाव मिलते हैं। जिनके फलस्वरूप वे अनेको तरह के सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। यदि बच्चों को बड़ो से उचित निर्देश सुझाव के रूप में मिलते रहते हैं तो इसमें वे कभी भी गलत रास्ते पर नहीं चलते और उनका सामाजीकरण भी तेजी से होता है।
3) **सुझाव सामाजिक नियंत्रण का एक साधन है:-**अक्सर यह देखा गया है कि जब हमें किसी बात का सुझाव बड़े एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियो से मिलता है तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं और अपने व्यवहार में उसी तरह का परिवर्तन लाते हैं। यही कारण है कि समाज-सुधारक बड़े-बड़े साधु-संत, नेतागण आदि अपने सुझाव द्वारा हमेशा लोगों के व्यवहारों को एक खास दिशा में मोड़कर नियंत्रित करते हैं और उन्हें वैसे व्यवहारों को करने के लिये प्रेरित करते हैं जो सामाजिक हित के लिये लाभदायक होते हैं।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि सुझाव व्यक्ति के सामाजिक जीवन में काफी महत्वपूर्ण योगदान करता है। सच्चाई यह है कि सुझाव द्वारा व्यक्ति और समाज में एक अन्योन्याश्रय संबंध कायम हो जाता है जिससे सामाजिक विकास में तेजी आ जाती है।

1.5 सहानुभूति

हम प्रायः सहानुभूति शब्द का प्रयोग करते रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों के बीच सहानुभूति एक महत्वपूर्ण चर्चा का विषय रहा है। सहानुभूति एक बहुत ही सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन प्रतिदन जिन्दगी में काफी करते हैं। परन्तु समाज मनोवैज्ञानिको द्वारा इस शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में किया गया है। इस व्यापक अर्थ में सहानुभूति से अभिप्राय समान भावना के संचार या संप्रेषण से होता है। यह समान भाव सिर्फ दया या दुख का ही नही होता है। बल्कि क्रोध, द्वेष तथा घृणा का भी हो सकता है। उदाहरण, हम अपने मित्र के दुश्मन के प्रति क्रोध, घृणा तथा द्वेष व्यक्त कर मित्र के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। इस तरह से हम अपने मित्र के प्रति उसके दुश्मन के साथ क्रोध, द्वेष तथा घृणा का भाव दिखला कर सहानुभूति प्रकट करते है। इसक अर्थ यह हुआ कि सहानुभूति प्रकट करने वाले व्यक्ति में वैसा ही भाव या संवेग होना चाहिए जो उस व्यक्ति में होता है।

परिभाषाएँ :-

विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने सहानुभूति की व्याख्या निम्न ढंग से की है:-

मैकडुगल के अनुसार:-

''साधारण अर्थो में सहानुभूति एक प्रकार की कोमलता है। जो उस व्यक्ति के प्रति होती है, जिसके साथ सहानुभूति प्रकट की जाती है। दूसरे के दुख में दुखी होना या दूसरे किसी व्यक्ति या प्राणी में एक विशेष भावना या संवेग को देखकर अपने में भी उसी तरह विशेष भावना या संवेग को देखकर अपने में भी उसी तरह की भावना या संवेग का अनुभव करना ही सहानुभूति है।''

जेम्स ड्रेवर के अनुसार:-

''दूसरे के भावो एवं संवेगो के स्वाभाविक अभिव्यक्तपूर्ण चिन्हो को देखकर उसी प्रकार के भावो एवं संवेगो को अपने में अनुभव करने की प्रवृत्ति को सहानुभूति कहते हैं।''

संक्षेप में सहानुभूति का अभिप्रायः ऐसे मनोभाव से होता है जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अनुरूप भावना या संदर्भ की अनुभूति करता है। उदाहरणतया एक स्त्री के रोने का विलाप करने पर दूसरी स्त्री के भी आंखो में आंसू आना है। यह उसकी शारीरिक अभिव्यक्ति से प्रमाणित होता है। इस प्रकार कई अच्छी विशेषताओं को व्यक्ति मे सहानुभूति द्वारा विकसित किया जा सकता है।

1.5.1 सहानुभूति के प्रकार:-

समाज मनोवैज्ञानिको ने मूलतः सहानुभूति के दो प्रकार बतलायेहैं:-

1) **सक्रिय सहानुभूति:-**सक्रिय सहानुभूति वैसी सहानभूति को कहा जाता है जिसमें एक व्यक्ति के दुख-दर्द या कष्ट को अनुभव करने के साथ उसे हल्का करने या कम करने के ख्याल से व्यक्ति क्रियात्मक रूप से प्रयत्नशील रहता है। उदाहरण, दुर्घटना में घायल व्यक्ति के कष्टो का अनुभव करते हुए यदि कोई व्यक्ति उसे अस्पताल तक ले जाकर उसकी चिकित्सा में मदद करता है तो इसे सक्रिय सहानुभूति की संज्ञा दी जायेगी।

2) **निष्क्रिय सहानुभूतिः-**यह सहानुभूति भावना प्रयास तथा क्रिया रहित होती है इस तरह की सहानुभूति में व्यक्ति दूसरे के दुख या दूसरों की संवेगात्मक अनुभूति के समान ही संवेगात्मक अनुभूति महसूस करता है। इस संवेगात्मक अनुभूति के अलावा वह कोई क्रिया या व्यवहार करने को तत्पर नहीं रहता है। उदाहरण, यदि किसी व्यक्ति को दुःख में पड़ा देखकर या किसी मुसीबत में फंसा देखकर यदि हम मात्र दुख के संवेग का अनुभव कर रह जाते हैं और किसी तरह की सक्रियता नहीं दिखलाते हैं तो इसे निष्क्रिय सहानुभूति कहा जायेगा।

1.5.2 सहानुभूति उत्पन्न करने वाले कारक या परिस्थितियां:-

सहानुभूति का आधार व्यक्ति का अपना अनुभव, ज्ञान एवं भिन्न-भिन्न तरह की अनुभूतियां होती हैं। व्यक्ति में सहानुभूति को जाग्रत करने वाले अनेको कारक हैं जिन पर समाज मनोवैज्ञानिको ने बल डाला है। आलपोर्ट ने प्रमुख ऐसे कारक जिनसे व्यक्ति में सहानुभूति उत्पन्न होती है।

1) **भावनाओं का पूर्व अनुभव:-**व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की भावना से तभी सहानुभूति रख सकता है जब उसने स्वंय स्वतंत्र रूप से भावना का अनुभव किया हो। यह अनुभव जितना अधिक गहरा होगा सहानुभूति भी उतनी ही अधिक होगी। व्यक्ति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कुछ विशेष शारीरिक मुद्राओं जैसे - रोने, हंसने, चिल्लाने आदि द्वारा करता है। उदाहरण - जब हम किसी व्यक्ति के रोने तथा कराहने की आवाज सुनते हैं। तो समझ लेते हैं कि वह दुखी है। भावना की अभिव्यक्ति का यह रूप देखकर अपनी पूर्व अनुभूति के अनुसार दुख का भाव मन में उत्पन्न हो जाता है।
2) **वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप का ज्ञान:-**सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए सिर्फ यही आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति मे भावनाओं की पूर्व अनुभूति हो बल्कि यह भी आवश्यक है कि सहानभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति की वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप या प्रकृति का भी ज्ञान हो। उदाहरण, जब हम किसी औरत की रूलाई सुनते हैं तो हमें उसके प्रति उतनी सहानुभूति नही होती जितनी की जब हम यह जान लेते हैं कि उसके रोने का कारण उसके पति का देहान्त हो जाना है। स्पष्ट है कि हमें वर्तमान परिस्थिति के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर सहानुभूति अधिक उत्पन्न होती है।
3) **कल्पनाशक्ति:-**सहानुभूति का उत्पन्न होना व्यक्ति की कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है। जिस व्यक्ति में जितनी ही अधिक कल्पना शक्ति होगी, उसमें दूसरों की भावना, संवेगों एवं परिस्थितियों के संबंध मे कल्पना करने की तत्परता उतनी ही अधिक होगी। व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को दुख में देखकर खुद भी काफी दुखी हो जाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आपको उसकी स्थिति, विचार एवं भावना आदि के साथ काफी घुला-मिला दे और यह कार्य कल्पना शक्ति के अभाव में नही हो सकता है।
4) **परिस्थिति के प्रति अभिरूचि की समानता:-**सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए यह भी जरूरी है जिस परिस्थिति में सहानुभूति उत्पन्न होनी है, उनमें दोनों पक्षों की समान अभिरूचि हो। जब तक उस परिस्थिति

विशेष के प्रति दोनों व्यक्तियो में समान अभिरूचि नही होगी, सहानुभूति उत्पन्न नही होगी। उदाहरण यदि कोई व्यक्ति का स्वरूप इस ढंग का है कि वह बच्चों से काफी घृणा करता है तो उसमें उस औरत के प्रति भी कोई सहानुभूति नही होगी, जिसके बच्चे की मृत्यु हो गयी है। यदि वह बच्चों से घृणा नहीं करता है तो औरत की रूलाई सुनते ही वह दुखी हो जायेगा और संतानहीन होने की पीड़ा का अंदाजा तुरन्त लगा लेगा।

1.5.3 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्व

सहानुभूति की उपयोगिता हमारे सामाजिक जीवन में काफी अधिक है क्योंकि इसके द्वारा हम भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों को सीखते हैं इसके महत्व को हम निम्न बिन्दुओं में बांट सकते हैं:-

1) **सहानुभूति भिन्नता की जननी है:-** जब कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति के दुख से दुखी होकर उसके दुख को बांट लेने की कोशिश करता है। तो ऐसी परिस्थिति में स्वभावतः वह दूसरा व्यक्ति अनजान होते हुए भी एक अच्छा मित्र बन जाता है। इस तरह से वैयक्तित्व मित्रता स्थापित हो जाती है। इतना ही नही, जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की घोर विपत्ति जैसे अकाल, भूकम्प आदि समय में मदद करता है तथा उसके दुख से दुखी होता है तो स्वभावतः दोनों राष्ट्रो के बीच मित्रता काफी गहरी हो जाती है तथा व्यापार सहयोग काफी बढ़ जाता है।
2) **सहानुभूति सामाजिक एकता तथा संगठन लाती है:-**सहानुभूति से मानव-समाज तथा पशु-समाज दोनोंमें ही सामाजिक एकता आती है। जब हम किसी के प्रति सहानुभूति दिखलाते हैं तो वह व्यक्ति बहुत जल्द ही हमारे प्रति आकर्षित होता नजर आता है। धीरे-धीरे दोनों की मित्रता गहरी हो जाती है और इस तरह से सामाजिक एकता का विकास होता है। पशु समाज में भी सामाजिक एकता के ख्याल से इस तरह की सहानुभूति कितनी महत्वपूर्ण है इसे मैकडुगल (1908) के दूसरों में इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है ''सहानुभूति एक ऐसा बंधन है, जो पशु-समाज को एक साथ बांधे रहता है और समूह के सभी सदस्यों में एकरूपता उत्पन्न करता है।
3) **सहानुभूति समाज में परोपकारी कार्यों की आधारशिला है:-**समाज में अधिकतर परोपकारी कार्यों का कारण लोगों में सहानुभूति है। दुखी व्यक्तियों, शारीरिक रूप से लाचार व्यक्तियों, विधवाओं आदि के प्रति सहानुभूति रखने के ख्याल के कारण ही समाज में लोग विधवा आश्रम, अनाथ-आश्रम, अन्धां, बहरां एवं गूंगें के लिये स्कूल आदि का निर्माण करते हैं। इस सहानुभूति के कारण ही घोर प्राकृतिक विपत्ति जैसे - सूखा, बाढ़, आगजनी, भूकम्प आदि की स्थिति आने पर परोपकारी कार्य जैसे - खाना, कपड़ा, दवा आदि मुफ्त बंटवाने का काम करते हैं।

1.6 सारांश

अतः संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि सुझाव, अनुकरण और सहानुभूति ये तीनों मूल प्रवृत्तियां ही सामाजीकरण का आधार है। सामाजीकरण की प्रक्रिया में सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति घनिष्ठ रूप से परस्पर जुड़कर दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया का कार्य सम्पादित करवाती है। सामाजिक जीवन में सुझाव व्यक्ति के व्यवहार को बदलने का महत्वपूर्ण तरीका है। इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को बनाया, बिगाड़ा तथा फिर बनाया जा सकता है। अनुकरण का भी सामाजीकरण के अतिरिक्त व्यक्तित्व विकास में बहुत महत्व है। इसी प्रकार सहानुभूति भी सामाजिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। चाहे मानव जगत हो या पशु जगत यदि इनमें अनुकरण तथा सहानुभूति की प्रक्रिया न हो और मनुष्य सुझाव की प्रक्रिया से अछूता रहे तो सामाजिक जीवन का आनंद समाप्त हो जायेगा और सम्पूर्ण जीवजगत के विकास की प्रक्रिया रूक जायेंगी।

1.7शब्दावली

- **सुझावग्रहणशीलता:** सुझावग्रहणशीलता सुझाव करने की वह तत्परता है जिसके कारण व्यक्ति सुझाव मानने के लिए तैयार हो जाता है।
- **सहानुभूति:** सहानुभूति वह मूल प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्तियों के भावों और संवेगों को देखकर उसी प्रकार की भावना या संवेग अनुभव करना सहानुभूति कहलाता है।
- **अनुकरण:**अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक और सीखा हुआ व्यवहार है।

1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में उनकी योग्यता के अनुसार .... की भिन्न-भिन्न मात्रा पायी जाती है।

2. क्या पशु-पक्षी विभिन्न तरह के व्यवहार अनुकरण द्वारा सीखते हैं -

   i. हां ii. नहीं

3. क्या प्राणियों में सहानुभूति के माध्यमों से विभिन्न श्रेष्ठ गुणों का विकास किया जाता है-

   i) हां ii) नहीं

4. दूसरे के संवेगों को देखकर उसी प्रकार के संवेग को अनुभव करना निम्न में से क्या है -

   i) सुझाव ii) अनुकरण iii) सहानुभूति

5. सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति किस प्रकार के व्यवहार है -

   i) तीनों ही अर्जित व्यवहार है।

   ii) तीनों समाज में रहकर सीखे गये व्यवहार है।

   iii) तीनों समाज में रहकर सीखे गये व्यवहार है।

iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

उत्तर : 1- सुझावग्रहणशीलता 2- हां 3- (i)4- (iii) 5- (ii)

1.9संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport,F.H. (1954) : Social Psychology (Houghton Mifflin,Boston).

Mc Dougall, W. (1921): Introduction to Social Psychology (Methuen London).

Murphy, G. & Newcomb, T.M. (2000) : Experimental Social Psychology York, Harper).

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अनुकरण से आप क्या समझते हो ? इसके प्रकारों तथा सामाजिक जीवन में इसके महत्व को समझाइये।
2. सुझाव को परिभाषित कीजिए। सामाजिक जीवन में इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. सहानुभूति किसे कहते हैं ? सहानुभूति के प्रकार बताते हुए इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-2 समाज मनोविज्ञान के विषय: अर्थ, स्वरूप, महत्व तथा विषयक्षेत्र

(Nature, Scope andSignificance of Social Psychology)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 परिभाषाएँ

2.4 समाज मनोविज्ञान का महत्व

2.5 समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.9संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मनुष्य जन्म से जिज्ञासु होता है। इस कारण मनुष्य व्यवहार और व्यवहार के विभिन्न स्वरूपों को जानने व समझने का प्रयास करता है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार करता है। इसी व्यवहार के 'क्यों' 'कैसे' और 'किस लिए' को समझने का प्रयास ही समाज मनोविज्ञान करता है। समाज मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं, सामाजिक व्यवहार तथा मनुष्य की सामाजिक अंतःक्रिया का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की शाखा के रूप में समाज मनोविज्ञान का विस्तार तथा विकास मैक्डूगल की पुस्तक Introduction to Social Psychology,1908 के प्रकाशित होने के बाद तेजी से हुआ।

समाज मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक पक्ष से है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समाज मनोविज्ञान का अधिकतम भाग व्यक्तित्व तथा सामाजिक पद्धतियों के परस्पर आपसी प्रभाव से सम्बन्धित है तथा अपेक्षाकृत कम भाग संस्कृति से सम्बन्ध रखता है।

2.2उद्देश्य

इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- समाज मनोविज्ञान के अर्थ, स्वरूप, परिभाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान के महत्व को समझ सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के विषय में विस्तार से जानने का अवसर मिलेगा।

2.3परिभाषाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं:-

किम्बल यंग (1961) के अनुसार:-

"समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक प्रतिक्रिया का और इससे प्रभावित व्यक्ति के विचारों, संवेगो, तथा आदतों का अध्ययन है।''

फिषर (1982) के अनुसार:-

"समाज मनोविज्ञान को पारिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि किस प्रकार से व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक वातावरण में उपस्थित दूसरे लोगों के द्वारा प्रभावित होता है, बदले में उस व्यक्ति का व्यवहार भी प्रभावित होता है।''

फेल्डमैन (1985) के अनुसार:-

"समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि एक व्यक्ति के विचार, भावनाएं तथा क्रियाएं दूसरे व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार प्रभावित होती हैं।"

क्रच, क्रचफील्ड तथा बैलेची (1986) के अनुसार:-

"समाज मनोविज्ञान, समाज मे व्यक्तियों के व्यवहार के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित है। अतः विस्तृत रूप से समाज मनोविज्ञान की परिभाषा समाज में व्यक्ति के व्यवहारों के अध्ययन के विज्ञान के रूप में की जा सकती है।"

बैरन तथा बाइरनी (2003) के अनुसार:-

"समाज मनोविज्ञान, वह विज्ञान है जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार की प्रकृति और कारणों के ज्ञान से सम्बन्धित होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें समाज में व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है तथा जिसमें विशेष रूप से पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए व्यक्ति के विचारों, भावनाओं तथा संवेगों का अध्ययन किया जाता है। समाज मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाने वाला व्यक्ति का व्यवहार उस व्यक्ति और उसके वातावरण दोनों का ही प्रकार्य है।

- क्या समाज मनोविज्ञान विज्ञान है ?

समाज मनोविज्ञान की परिभाषाओं की विवेचना से सिद्ध होता है कि समाज मनोविज्ञान विज्ञान है इस तथ्य का परीक्षण विज्ञान के आवश्यक तत्वों के आधार पर कर सकते हैं। विज्ञान के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं:-

1) **वैज्ञानिक पद्धति:-**किसी भी विषय को विज्ञान तभी कहा जा सकता है तब उसकी अध्ययन पद्धतियां वैज्ञानिक हो। निरीक्षण विधि, श्रेणी, मापनी विधियां, मनोमिति विधियां तथा सांख्यिकीय विधियां ऐसी वैज्ञानिक विधियां हैं जिनका प्रयोग समाज मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन हेतु किया जाता है।
2) **प्रमाणिकता:-** किसी भी विषय को विज्ञान तभी कहा जाता है जब उसकी विषय सामग्री में प्रमाणिकता का गुण पाया जाता है अर्थात् उस विषय सामग्री को जितनी बार जांचा जाये उससे एक ही परिणाम प्राप्त हो। समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री प्रमाणिक होने के कारण समाज मनोविज्ञान इस कसौटी पर खरी उतरती है।
3) **सार्वभौमिकता:-**वैज्ञानिक विषयों के सिद्धांत तथा नियमों के सार्वभौमिक होने का अर्थ है कि यह सिद्धांत और नियम किसी देश या काल में खरे उतरते हैं। समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री में वस्तुनिष्ठता, प्रमाणिकता और भविष्यवाणी की योग्यता है तो निश्चित रूप से यह सिद्धांत और नियम सार्वभौमिक होंगे।
4) **वस्तुनिष्ठता:-**जब हम किसी घटना का परीक्षण वास्तविक रूप में करते हैं और जब शोधकर्ता की मनोवृत्तियों का परीक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो ऐसे परीक्षणों से प्राप्त परिणाम वस्तुनिष्ठ परिणाम

कहलाते हैं। शोध करने वाले सभी शोधकर्ता एक ही निष्कर्ष प्राप्त करते हैं तो उस परिणाम में वस्तुनिष्ठता पायी जाती है।

5) **भविष्यवाणी की योग्यता:-**वैज्ञानिक विषयों में भविष्यवाणी की योग्यता भी पायी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी समूह के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये तो यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि वह भविष्य में किस तरह का व्यवहार करेगा। चूंकि समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का परीक्षण वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है अतः समाज मनोविज्ञान के अध्ययनों के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है।

विज्ञान की उपर्युक्त पांच विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान विज्ञान है।

2.4 समाज मनोविज्ञान का महत्व

समाज मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। पहले समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र सीमित होने के साथ-साथ इसमें वैज्ञानिक अध्ययनों का अभाव था परन्तु आधुनिक समय में इसका क्षेत्र विस्तृत हो रहा है और इस क्षेत्र में अनेक शोधकार्य हो रहे हैं इसलिए समाज मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकास कर रहा है। सिम्पसन का मत है कि समाज मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में अपना अस्तित्व रखता है। सामाजिक समस्याओं के समाधान में यह व्यवहारिक शाखा बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

आजकल समाज मनोविज्ञान की सहायता से सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को समझा ही नही जा सकता बल्कि इन समस्याओं को दूर भी किया जा सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान की इस शाखा का महत्व किसी क्षेत्र विशेष में न होकर संसार में जहां समाज है वहां इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता तथा उपयोगिता है। हमारे दैनिक जीवन की सामाजिक समस्याएं जैसे विवाह से सम्बन्धित समस्याएं, फैशन, जनमत तथा जातिगत समस्याओं से सम्बन्धित अनेक अध्ययन हो चुके हैं। इसी प्रकार व्यापार, राजनीति आदि क्षेत्रो में भी अनेक समस्याओं का समाधान ही नहीं हुआ है बल्कि इससे समाज को एक नई दिशा भी मिली है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिन की समस्याओं के अध्ययन में समाज मनोविज्ञान लाभदायक सिद्ध हुआ है।

निम्नलिखित क्षेत्रों में समाज मनोविज्ञान का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है:-

1- सामाजिक प्रकृति के अध्ययन में।

2- सामाजिक अंतःक्रियाओं के अध्ययन में।

3- पक्षपात तथा पूर्वाग्रहों के अध्ययन में।

4- अपराध तथा समाज विरोधी व्यवहार के अध्ययन में।

5- पारिवारिक समायोजन के अध्ययन में।

6- क्रांति, युद्ध आदि गंभीर सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में।

7- जनसंचार माध्यमों के अध्ययन में।

8- जनमत, प्रचार तथा फैशन आदि क्षेत्र के अध्ययन में।

सैद्धान्तिक उपयोगिता:-

1. समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत परोपकारिता के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया। इनसे परोपकारिता तथा सहायता परक व्यवहार को समझने में मदद मिली।
2. अंतरंग संबंधो के क्षेत्र में हुए अध्ययनों से घनिष्ठ सम्बन्धों के बारे में जानना आसान हो गया है।
3. समाज मनोविज्ञान में सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के कारण व्यक्ति सही निर्णय लेने में सक्षम महसूस करने लगा है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांतों के प्रतिपादन से ही ऐसा संभव हुआ है।
4. आक्रामकता और हिंसा संबंधी व्यवहार को जानने इसे बढ़ाने वाले कारकों तथा नियंत्रित करने वाले कारकों को समझने में समाज मनोविज्ञान सहायक सिद्ध हुआ है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त समस्याओं के अध्ययन तथा निराकरण हेतु समाज मनोविज्ञान का विषय बहुत महत्वपूर्ण है।

2.5 समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो चुका है कि समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों तथा सामाजिक अंतःक्रिया का अध्ययन करता है अतः समाज मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र काफी व्यापक तथा विस्तृत है। समाज मनोविज्ञान की सीमा तथा क्षेत्र को निर्धारित करना तो संभव नहीं है परन्तु अध्ययन की आसानी के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता है:-

1- **सामाजिक मनोवृत्तियों का अध्ययन:-** समाज के विभिन्न पक्षों, व्यक्तियों तथा विचारों के प्रति प्रतिक्रिया करने की मनोवैज्ञानिक तत्परता ही सामाजिक मनोवृत्ति कहलाती है। यह मनोवृत्तियां जन्मजात न होकर अर्जित की हुई होती हैं। हमारे अधिकतर कार्य व्यक्तियों, वस्तुओं और विचारों के प्रति प्रतिक्रियाएं हमारी इन्ही मनोवृत्तियों से प्रभावित तथा निर्देशित होती है इनमें से कुछ मनोवृत्तियां सकारात्मक होती हैं जो समाज तथा व्यक्ति के विकास में सहायक होती हैं जबकि कुछ मनोवृत्तियां नकारात्मक होने के कारण सामाजिक विकास में बाधा डालती हैं। समाज तथा देश के विकास के लिए इन बाधाओं को दूर करना आवश्यक होता है। समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोवृत्ति निर्माण, परिवर्तन, परिवर्तन की विधियों तथा सिद्धांतों का विस्तार से अध्ययन किया जाता है।

2- **संस्कृति तथा व्यक्तित्व का अध्ययन:-** व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसी की संस्कृति के अनुरूप उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। पृथक-पृथक संस्कृतियों में पालन पोषण का तरीका भी भिन्न-भिन्न होता है। इसी

कारण एक ही समाज में दो भिन्न-भिन्न जातियों में पलने वाले बच्चों के व्यक्तित्व, काम करने का तरीका, सोचने समझने का तरीका, उसकी आदतें आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

3- **अंतरवैयक्तिक आकर्षण का अध्ययन:-** जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या समूहों से अंतःक्रिया करता है तो उनके बीच आकर्षण या विकर्षण उत्पन्न होने लगता है। इस आकर्षण-विकर्षण के कई रूप हैं तथा इसे कई तत्व प्रभावित भी करते हैं इन सबका अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

4- **सामाजिक व्याधियों का अध्ययन:-** समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समाज में व्याप्त सामाजिक व्याधिकीय समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति के अंदर पूर्वाग्रह, पक्षपात तथा गलत विचार होते हैं उसी प्रकार समाज में भी ये व्याधियां हो सकती हैं। वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, बाल अपराध, पारिवारिक विघटन, सामूहिक संघर्ष आदि सामाजिक रोग आज समाज में बढ़ते जा रहे हैं इनका अध्ययन, निदान तथा उपचार करना सामाजिक मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

5- **संचार माध्यमों का अध्ययन:-** आधुनिक संचार माध्यम जैसे रेडियो, समाचार पत्र, टेलीविजन आदि व्यक्ति के व्यवहार, मत तथा सोचने के तरीके को प्रभावित करते हैं। इन्हीं माध्यमों के आधार पर मनोवृत्ति परिवर्तन सम्भव होता है। इनका अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के ही अंतर्गत किया जाता है।

6- समूह तथा सामूहिक व्यवहार का अध्ययन:- समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समूह, उसके प्रकार तथा समूह के व्यवहार पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन भी किया जाता है।

7- सामाजिक एकता एवं तनाव का अध्ययन:- आधुनिक युग में विभिन्न जाति, धर्म, भाषा के कारण व्यक्ति में तनाव की स्थिति बनी हुई है। इन लोगों में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, घृणा और पक्षपात उत्पन्न हो गया है। जिससे राष्ट्रीय एकता का विखण्डन हो रहा है। सामाजिक एकता को स्थापित करके ही किसी भी देश या समाज का विकास सम्भव हो सकता है इसलिए सामाजिक एकता को स्थापित करने वाले घटकों तथा तनावों को दूर करने वाले कारकों का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

8- **मनुष्य की सामाजिक प्रकृति का अध्ययन:-** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज से अपनी विभिन्न सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जिनमें अनुमोदन की आवश्यकता, यौन आवश्यकता, उपलब्धि आवश्यकता मुख्य होती है। समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत समूह में रहने के लिए आवश्यक इन सभी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है।

9- सामाजिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन:- समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत तीन प्रकार की अंतःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है:-

(क) व्यक्ति तथा व्यक्ति के मध्य अंतःक्रिया।

(ख) व्यक्ति तथा समूह के मध्य अंतःक्रिया।

(ग) समूह तथा समूह के बीच अंतःक्रिया।

सामाजिक अंतःक्रियाओं के अंतर्गत प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, सामंजस्य तथा संघर्ष, सहयोग आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

10- आक्रामकता और हिंसा:- आज समूचे विश्व में आक्रामकता सम्बन्धी समस्या बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप हिंसा उत्पन्न हो रही है। आक्रामकता और हिंसा को बढ़ाने वाले कारक तथा इसे दूर करने के उपायों का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।

11- परोपकारिता:- समाज के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परोपकारिता का गुण आवश्यक है और यही समाज में सुख शांति स्थापित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। परोपकारिता को प्रभावित करने वाले कारक, परोपकारिता की सैद्धांतिक व्याख्या भी समाज मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले प्रश्न हैं।

12- सामाजिक संज्ञान का अध्ययन:- हम विभिन्न संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के द्वारा अपने चारों ओर के वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर मस्तिष्क में उनकी छवि बनाते हैं जिसे व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण कहते हैं इस पर सामाजिक सांस्कृतिक तत्वो के प्रभाव को सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

इन सब प्रक्रियाओं तथा इन्हें प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इसके अतिरिक्त संज्ञान की सन्नादिता तथा विसन्नादिता का अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान में किया जाता है। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याओं का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में किया जाता है। वास्तव में समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक और विस्तृत है जितना समाज और व्यक्ति का सामाजिक जीवन।

लापियरी और फ्रांसवर्थ (1949) ने समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र की व्यापकता का महत्व बतलाते हुए कहा है:-

''समाज मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में विशिष्ट विज्ञान है, इसके विषय क्षेत्र को निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि ज्ञान में वृद्धि होने के साथ-साथ उसमें भी परिवर्तन होगा।''

2.6 सारांश

उपरोक्त विवरण के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करते हैं ठीक उसी प्रकार समाज मनोविज्ञान में भी व्यक्ति के व्यवहार का ही अध्ययन किया जाता है। समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार पर सामाजिक अंतःक्रिया का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है यही अध्ययन हम मनोविज्ञान की इस शाखा में करते हैं। इसीलिए सिकोर्ड तथा बैकमैन (1974) ने लिखा है कि ''सामाजिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन सामाजिक संदर्भ में करता है।'' इसलिए समाज मनोविज्ञान को समाज में घटित होने वाले व्यवहार का अध्ययन करने वाला विषय कहा जाता है।

2.7 शब्दावली

- **सामाजिक अंतःक्रिया:** समाज में रहने वाले व्यक्तियों के बीच पारस्परिक व्यवहार व आपसी लेन-देन को सामाजिक अंतःक्रिया कहा जाता है।
- **सार्वभौमिकता:**संसार के सभी प्राणियों पर जिसे समान रूप से लागू किया जा सकता है उसे सार्वभौमिकता कहते हैं।
- **सामाजिक संज्ञान:** सामाजिक परिस्थितियों व घटनाओं के बारे में प्राप्त ज्ञान को सामाजिक संज्ञान कहते हैं।
- **परोपकारिता:** बिना अपना हित सोचे दूसरों की सहायता या मदद करना परोपकारिता कहलाता है।

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- क्या समाज मनोविज्ञान विज्ञान है ?

(i)हां (ii) नहीं

2- मैकडूगल की समाज मनोविज्ञान की पुस्तक कब प्रकाषित हुई -

(ii) सन् 1911 (ii) सन् 1914

(iii) सन् 1905 (iv) सन् 1908

3- समाज मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठता का गुण विद्यमान होता है -

(i) हां (ii) नहीं

उत्तर : 1- (i) 2- (iv) 3- (i)

2.9संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, F.W. (1929) : Social Psychology (Houghton Mifflin, Boston)

Baron and Byrne (1987) : Social Psychology, Cambridge, London

Fransworth (1941) : Social Psychology, Introduction (Mc Graw Hill, New York)

Freeman, F.(1936) : Social Pshyhology, Ch. 1 (Henry Holt & Company)

Klinberg, O.	:	Social Psychology, Ch. 1, (Henry Holt & Company, New York 2nd Ed.)
La Piere & Lindzey, G. (1954)	:	Handbook of Social Psychology, Vol. I Chs. 4-5 (Addison Wesley Publishing company Inc, Cambridge)
MC Dougall, W. (1934)	:	An Introduction to Social Pshychology, Ch. 7 (Methuen and Co. Ltd.)
Meyrson, A. (1934)	:	Social Psychology, Ch. 1, (Prentice Hall Inc.)
Newcomb, T.M. (1955)	:	Social Psychology, Ch. 1, (Tavistock Publications Ltd.)
Young, K. (1953)	:	Handbook of Social Psychology, Introduction (Routledge & Kegan Paul Ltd., London)

डॉ0 आर.एन. सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हापुड़ रोड, आगरा

2.10निबन्धात्मक प्रश्न

1- समाज मनोविज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इसके क्षेत्र का निर्धारण कीजिए ?

2- निम्न पर टिप्पणी लिखिए:-

क- क्या समाज मनोविज्ञान, विज्ञान है ?

ख-समाज मनोविज्ञान का अर्थ स्वरूप तथा परिभाषाएँ।

3- समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र को विस्तार से समझाइए ?

इकाई-3 सामाजिक व्यवहार की अध्ययन विधियाँ- अवलोकन, सर्वेक्षण, व्यक्तिअध्ययन, समाजमिति एवं प्रयोगात्मक

(Study methodsof Social Behavior:- Experimental,Observation, Survey, Case study, Sociometry and)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अर्थ एवं स्वरुप

3.4 प्रेक्षण विधि

3.5 सर्वेक्षण विधि

3.5.1 वेबर नियम की आलोचना

3.5.2 सर्वेक्षण विधि के मुख्य पद

3.5.3 सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व

3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण की सीमाएं

3.6 वैयक्तिक अध्ययन विधि

3.7 समाजमिति विधि
3.7.1 समाजमिति निश्लेषण की प्रविधियां
3.7.2 समाजमिति प्रविधियों के लाभ
3.7.3 समाजमिति प्रविधियों के दोष
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1प्रस्तावना

समाज मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों से तात्पर्य उस क्रिया विधि से होता है जिसका प्रयोग किसी अध्ययन समस्या के समाधान हेतु किया जाता है। प्रारम्भ में समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का अध्ययन अनुमान एवं कल्पना के आधार पर करते थे जिससे निष्कर्ष में वैज्ञानिकता का अभाव मिलता था इसी कारण उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में सार्वभौमिकता का गुण भी नहीं पाया जाता था, परंतु जैसे-जैसे समाज मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत होता गया। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार के अध्ययन से वस्तुनिष्ट, विश्वसनीय तथा वैध परिणाम प्राप्त करने के लिए जिन विधियों का सहारा लेना शुरू किया उनमें से कुछ अध्ययन विधियों का वर्णन निम्न प्रकार से है:-

1- प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

2- प्रेक्षण विधि (Observation Method)

3- सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

4- वैयक्तिक अध्ययन विधि (Case Study Method)

5- समाजमिति विधि (Sociometry)

3.2उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित अध्ययन में प्रयुक्त विधियों को विस्तार से जानेंगे।
- इन विधियों के अर्थ, परिभाषाओं, प्रकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- इन विधियों के गुण, दोषों तथा समाज मनोविज्ञान में इनके महत्व को जान सकेंगे।

3.3 प्रयोगात्मक विधि

समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का बहुत महत्व है। इस विधि के द्वारा कार्य और कारण सम्बन्ध (cause and effect relation) का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। समाज मनोविज्ञान में अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि का उपयोग प्रयोग की पुनरावृत्ति के गुण के कारण अधिक होता है। पुनरावृत्ति से प्रयोग की यथार्थता का प्रमाण भी मिल जाता है।

परिभाषाएँ -

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक विधि की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं-

फेस्टिंगर (1953) के अनुसार ''प्रयोग का मूल आधार स्वतंत्र चर में परिवर्तन करने से परतन्त्र चर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।''

जहोदा तथा उसके साथियों (1959) के अनुसार ''प्रयोग परिकल्पना के परीक्षण की एक विधि है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रयोगात्मक विधि में चर को योजनानुसार घटा-बढ़ाकर, नियंत्रित दशाओ में निरीक्षण लेकर परिकल्पना को सत्य या असत्य सिद्ध करते हैं।

- **प्रयोगात्मक विधि के प्रकार-**

समाज मनोविज्ञान में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए निम्न तीन तरह की प्रयोगविधियां अपनायी गयी हैं।

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि
2. क्षेत्र प्रयोग विधि
3. स्वाभाविक प्रयोग विधि

1) प्रयोगशाला प्रयोग विधि-

प्रयोगशाला प्रयोग विधि वह है जिसमें समाज मनोवैज्ञानिक किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में प्रयोग द्वारा करते हैं। इस विधि में वे प्रायः प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या का यादृच्छिक रूप से चयन करके उसे आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न समूहों जैसे - प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में बांटकर प्रयोग करते हैं। स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने पर उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखा जा सकता परंतु उसके अध्ययन मे प्रयोगकर्ता की रूचि नहीं होती, नियंत्रित करके रखा जाता है बहिरंग चर कहा जाता है यदि अन्य चरों को जिनका प्रभाव आश्रित चर पर पड़ जाता है स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने से आश्रित चर में कुछ परिवर्तन आ जाता है तो सामाजिक मनोवैज्ञानिक इन दोनोंचरों में कारण-परिणाम सम्बन्ध के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं। इस तरह से समाज मनोवैज्ञानिक जब प्रयोगशाला विधि द्वारा किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तो वे एक सीमित प्रयोज्यो का यादृच्छिक रूप से चयन करके प्रयोगशाला में एक कृत्रिम परिस्थिति सृजन करते हैं। समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि के प्रयोग को एक मशहूर प्रयोग जिसे लाइबर्ट तथा बेरोन (1972)

ने किया है। इस प्रकार दिखला सकते हैं। इस प्रयोग का उद्देश्य यह देखना था कि टेलीविजन पर लड़ाई-झगड़ा तथा हिंसा की बहुलता वाले दृश्य देखकर क्या बच्चों में आक्रमकण शीलता के स्तर में वृद्धि हो जाती है ? इस प्रयोग में दोनों लिंग के छोटे-छोटे बच्चों ने भाग लिया। बच्चों को यादृच्छिक रूप से दो समूह में बांट दिया गया - आक्रमणशील दृश्य दिखाये जाने वाला समूह तथा तटस्थ दृश्य दिखाये जाने वाला समूह। टेलीविजन देखने के तुरन्त बाद दोनों समूह के बच्चों को एक ऐसी परिस्थिति में रखा गया जिसमें प्रत्येक बच्चों को दूसरे बच्चों को हानि या आघात पहुंचाने का पर्याप्त सुअवसर था। परिणाम में देखा गया कि आक्रमण दृश्य देखने वाले बच्चों में तटस्थ दृश्य देखने वाले बच्चों की अपेक्षा आक्रमणशीलता का स्तर काफी अधिक थी।

प्रयोगशाला प्रयोग विधि के गुण:-

- इस विधि के प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में चूकि प्रयोग एक काफी नियंत्रित अवस्था में किया जाता है। अत इसके परिणाम की आन्तरिक वैधता काफी अधिक होती है। इसके फलस्वरूप परिणाम अधिक निर्भर योग्य होता है।
2. चूंकि प्रयोग की अवस्था काफी नियंत्रित होती है। अतः चाहकर भी प्रयोगकर्ता किसी प्रकार का पक्षपात तथा पूर्वाग्रह आदि नहीं दिखला पाता है। फलस्वरूप प्रयोगशाला प्रयोग में आत्मनिष्ठता नही होती है। प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक प्रयोगात्मक डिजाइन का उपयोग कर भिन्न-भिन्न तरह के पक्षपात जैसे - प्रयोगकर्ता से संबंधित पक्षपात, प्रयोज्यों से संबंधित पक्षपात आदि को पूर्णतः नियंत्रित कर लेता है।
3. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में चूंकि चरों में जोड़-तोड़ संभव है। अतः प्रयोगकर्ता हर तरह से अपने आप को संतुष्ट कर प्रयोग को अधिक विश्वसनीय बना लेता है। इतना ही नही, इस विधि में चूंकि प्रयोगकर्ता एक निश्चित डिजाइन, विधि, सांख्यिकीय विश्लेषण आदि को अपनाता है। अतः कोई भी प्रयोगकर्ता यदि बाद में उस प्रयोग को दोहराना चाहे, तो उसे वह आसानी से दोहरा सकता है।
4. चूंकि प्रयोगशाला प्रयोग के परिणाम का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है, अतः इसका परिणाम अधिक वस्तुनिष्ठ होता है।

- प्रयोगशाला प्रयोग विधि के दोष निम्नलिखित हैं-

1. इस विधि में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन एक कृत्रिम अवस्था में किया जाता है। चूंकि प्रयोगशाला की परिस्थिति कृत्रिम होती है। जिसका संबंध कभी-कभी जीवन को वास्तविक परिस्थिति से न के बराबर होता है। अतः इससे प्राप्त परिणाम इन वास्तविक हालातो के लिए प्रायः सही नही होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस विधि में यद्यपि आन्तरिक वैधता होती है फिर भी बाह्य वैधता नही होती है। बाह्य वैधता से तात्पर्य प्राप्त परिणामो को जिन्दगी के वास्तविक हालातों में सही-सही लागू करने से होता है।
2. प्रयोगशाला प्रयोग विधि में बाह्य वैधता के कमी का दूसरा कारण प्रयोज्यो की एक सीमित संख्या होती है। इस विधि द्वारा अध्ययन में प्रायः बहुत थोड़े से व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया जाता है और उसमें प्राप्त

परिणाम को अन्य सभी व्यक्तियों के लिए सही ठहराया जाता है। आलोचकों का मत है कि यह विधि ऐसा करने में हमेशा समर्थ नही होती।

3. प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सभी तरह के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन करना संभव नही है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक भीड़, क्रान्ति, युद्ध आदि का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर कैसा पड़ता है, का अध्ययन इस विधि द्वारा करना चाहता है। तो शायद वह ऐसा करने में समर्थ नही हो पायेगा क्योंकि प्रयोगशाला में भीड़, क्रान्ति तथा युद्ध की स्थिति पैदा नही की जा सकती है।

इन अवगुणों के बावजूद भी समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि का उपयोग आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा काफी किया जा रहा है।

2) क्षेत्र प्रयोग विधि-

क्षेत्र प्रयोग विधि प्रयोगात्मक विधि की दूसरी प्रमुख उपविधि है। जिसका प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक किया गया है। इस विधि की आवश्यकता कुछ ऐसे सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में महसूस की गयी। जिसे प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सामान्यतः नही किया जा सकता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भीड़ आन्दोलन कुछ ऐसी सामाजिक समस्याएं है जिनका प्रयोगशाला में अध्ययन नही किया जा सकता है। फिर भी समाज मनोवैज्ञानिक इन समस्याओं का अध्ययन करना चाहते हैं तो किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में न करके वास्तविक परस्थिति में जिसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र कहा है, किया जाता है। प्रयोगकर्ता इसी वास्तविक परिस्थिति में स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है तथा उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है। फिशर ने क्षेत्र विधि को परिभाषित करते हुए कहा ''क्षेत्र प्रयोग में शोधकर्ता वास्तविक सेटिंग में स्वतंत्र चर को देकर या उसमें जोड़-तोड़ कर एक तरह से हस्तक्षेप करता है और बाद में आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावो की माप करता है।

क्षेत्र प्रयोग विधि तथा प्रयोगशाला प्रयोग विधि बहुत कुछ एक-दूसरे के समान है दोनों विधियों में ही प्रयोग नियंत्रित अवस्थाओं में ही किया जाता है तथा दोनों ही विधियों में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करता है और उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है। इतना होते हुए भी क्षेत्र प्रयोग विधि में चूंकि प्रयोग एक स्वाभाविक परिस्थिति में न कि प्रयोगशाला के कृत्रिम परिस्थिति में किया जाता है। अतः प्रायः प्रयोज्यों को यह पता नही रहता है कि उन पर किसी प्रकार का प्रयोग किया जा रहा है। इससे यह लाभ होता है कि प्रयोज्य प्रयोगात्मक परिस्थिति में वास्तविक अनुक्रिया करता है न कि किसी तरह की बनावटी अनुक्रिया। इससे क्षेत्र प्रयोग विधि पर निर्भरता थोड़ा बढ़ जाती है।

क्षेत्र प्रयोग विधि का एक उदाहरण इस प्रकार है - मान लीजिए कोई समाज मनोवैज्ञानिक क्षेत्र प्रयोग करके यह देखना चाहता है कि क्या डर से व्यक्ति में संबंध प्रेरणा अर्थात एक-दूसरे के साथ की आवश्यकता तीव्र हो जाती है। इस प्रयोग में डर स्वतंत्र चर है तथा संबंध प्रेरणा एक आश्रित चर है। मान लीजिए कि प्रयोगकर्ता यह निश्चित करता है कि वह इस प्रयोग में स्वतंत्र चर के दो स्तर रखेगा। अधिक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति तथा कम डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को कालेज के 30 छात्रों पर लागू करते हैं जो इस प्रयोग के लिए उपलब्ध होते हैं। प्रयोगकर्ता यादृच्छिक रूप से इन सभी छात्रो को दो भागो में बांट देगा। एक समूह को अधिक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाएगा तथा दूसरे समूह को कम डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जायेगा। चूंकि यह एक क्षेत्र प्रयोग है, अतः इन दोनों समूहों को एक वास्तविक परिस्थिति में रखा जायेगा। मान लिया जाये कि अधिक डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को किसी मकान की तीसरी मंजिल में रख दिया जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि मकान की प्रथम दो मंजिलो में भयानक आग लग गयी है। कम डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को भी किसी वैसे ही मकान की तीसरी मंजिल में रखा जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि बगल के मकान में तीव्र आग लग गयी है। प्रयोगकर्ता दोनोंसमूहों के व्यवहार का निरीक्षण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि अधिक डर की परिस्थिति में रहने वाले समूह के अधिकतर सदस्य एक दूसरे के साथ होकर परिस्थिति का सामना करते हुए स्थिति सामान्य होने का इंतजार करते हैं जबकि कम डर की परिस्थिति में रहने वाले सदस्यों में इस ढंग का व्यवहार न के बराबर होता है। यदि सचमुच में ऐसा ही निष्कर्ष प्राप्त होता है तो स्पष्टता यह कहा जा सकता है कि व्यक्तियो में संबंधन अभिप्रेरणा बढ़ जाता है।

- क्षेत्र प्रयोग विधि प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. इस विधि में प्रयोग चूंकि वास्तविक परिस्थिति जैसे - बस, रेलवे, प्लेटफार्म, वर्ग, गली के कार्नर आदि में किया जाता है। अतः इससे प्राप्त परिणाम जीवन के वास्तविक हालातो के लिए अधिक सही होते हैं तथा उसका सामान्यीकरण बहुत ही विश्वास के साथ अधिकतर व्यक्तियों के लिए किया जाता है।
2. इस विधि में प्रयोगशाला विधि के ही समान स्वतंत्र चरों को जोड़-तोड़ किया जाता है तथा यथासंभव बहिरंग चरों को भी नियंत्रित करके रखा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस विधि में आन्तरिक वैधता भी बहुत हद तक बनी रहती है। इसमें प्रयोग के परिणाम अधिक निर्भर योग्य हो जाते हैं।

- क्षेत्र प्रयोग विधि के दोष निम्नलिखित हैं:-

1. चूंकि क्षेत्र प्रयोग स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है अतः प्रयोगकर्ता सभी तरह के वहिंरग चरों का नियंत्रण उस सीमा तक नहीं कर पाता जिस सीमा तक एक प्रयोगशाला प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में कर पाता है। इसप्रकार बहिरंग चरक्षेत्र प्रयोग के नियंत्रण के बाहर हो जाते हैं और आश्रित चर को प्रभावित कर देते हैं। जैसे - क्षेत्र में प्रयोग करते समय ऐसा सम्भव है कि बगल में कोई बारात पार्टी बाजे-गाने की धुन बजाते हुए

गुजरे जिससे प्रयोग के सभी प्रयोज्यो का ध्यान उस ओर चला जाये और उनको अपने कार्य का ध्यान ही न रहे।

2. क्षेत्र प्रयोग विधि में कभी-कभी स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ करना कठिन हो जाता है। फलस्वरूप प्रयोगकर्ता को लाचार होकर इस विधि का परित्याग कर प्रयोगशाला प्रयोग विधि अपनाना पड़ता है। जैसे - अगर कोई क्षेत्र प्रयोग इस प्राक्कल्पना की जांच करने के लिए किया जा रहा हो कि जब थके हुए व्यक्ति काफी डर जाते हैं तो उनमें संवधन प्रेरणा आवश्यकता से अधिक होती है। तो शायद यहां दोनों स्वतंत्र चरों अर्थात डर एवं थकान को क्षेत्र की परिस्थिति में जोड़-तोड़ करना सम्भव नहीं हो पाता। हां, यदि प्रयोगशाला की परिस्थिति होती तो आराम की अवस्था तथा थकान की अवस्था में प्रयोज्यो को यादृच्छिक रूप से आसानी से बांट कर और प्रयोग किया जा सकता था। क्षेत्र में इन दोनों अवस्थाओं का सृजन करके उसमें प्रयोज्यो को यादृच्छिक रूप से बांटना किसी भी प्रयोगकर्ता के लिए एक टेढ़ी खीर है।

क्षेत्र प्रयोग विधि के गुण दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि क्षेत्र प्रयोग से प्राप्त परिणाम में सामान्यीकरण का गुण बहुत अधिक होता है परन्तु ध्यान रहे कि यह गुण एक महत्वपूर्ण बलिदान देने के बाद प्राप्त होता है और वह है बहिरंग चरों पर पूर्ण नियंत्रण का। वर्केल तथा कूपर ने ठीक ही कहा है, ''क्षेत्र प्रयोग में परिणाम के सामान्यीकरण का गुण तो होता है परन्तु उसमें यह गुण प्रायः बहिरंग चरों पर नियन्त्रण की कुरबानी की कीमत पर विकसित होता है।''

3) स्वाभाविक प्रयोग विधि-

समाज मनोविज्ञान में स्वभाविक प्रयोग विधि का भी प्रयोग किया जाता है। हां, इतना अवश्य है कि इस विधि का प्रयोग प्रथम दो विधियों के समान बहुत नही हुआ है। कभी-कभी समाज मनोवैज्ञानिको को कुछ इस प्रकार के सामाजिक व्यवहारो का भी अध्ययन करना पड़ता है जिसमें स्वतंत्र चर तो होते हैं परन्तु कुछ नैतिक तथा कानूनी प्रतिबन्ध के कारण उसमें जोड़-तोड़ न तो प्रयोगशाला में किया जा सकता है और न ही क्षेत्र में जैसे - महामारी, छुआछूत की बीमारियां, स्कूल या कॉलेज में असफलता, परिवार में किसी महत्वपूर्ण सदस्य की मृत्यु, बाढ़, भूकम्प आदि कुछ इस प्रकार के कारक हैं जिन्हें कोई भी प्रयोगकर्ता व्यक्तियों के व्यवहारों पर पड़ने वाले प्रभावो का अध्ययन करने के लिए अपनी ओर से उत्पन्न नही कर सकता है। अतः वह एक ऐसे समय तक इंतजार करता है। जब इस प्रकार के प्राकृतिक कारक अपने आप उत्पन्न हो जायें ताकि उस समय वह व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सके तथा उसमें संबंधित आंकड़ो का संकलन कर सके। इसे ही स्वाभाविक प्रयोग विधि की संज्ञा दी जाती है।

स्वाभाविक प्रयोग विधि के एक उदाहरण का उल्लेख कर सकते हैं। एकअध्ययन जिसकामुख्य उद्देश्य यह देखना था कि व्यक्तियों की मनोवृत्ति कहां तक उसके भूमिका पद द्वारा प्रभावित होती है। जिस औद्योगिक संगठन में वे यह अध्ययन कर रहे थे, उनमें कुछ सामान्य कर्मचारियों को पर्यवेक्षक के पद पर पदोन्नति कर दी

गयी थी तथा कुछ कर्मचारियों को संघ के प्रबन्धक के पद पर चुन लिया गया था इसके बाद इन कर्मचारियों की मनोवृत्ति व्यवस्थापक तथा संघ के प्रति मापी गयी परिणाम में देखा गया कि जिन कर्मचारियों को पर्यवेक्षक का पद दे दिया गया था उसकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति पहले से अधिक अनुकूल हो गयी तथा जिन कर्मचारियों को संघ का प्रबंधक बना दिया गया था, उनकी मनोवृत्ति संघ के प्रति पहले से अधिक अनुकूल हो गयी। फिर बाद में जब उस औद्योगिक संगठन में आर्थिक मंदता आ गयी तो कुछ पर्यवेक्षको को पुनः पहले के पद पर पदान्वत कर दिया गया और अब उनकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति उतनी अनुकूल नही रह गयी। परन्तु जिन पर्यवेक्षकों को पदावनत नही किया गया, उनकी मनोवृत्ति व्यवस्थापक के प्रति अनुकूल ही बनी रही।

- स्वाभाविक प्रयोग विधि के प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. इस विधि में प्रयोग बिल्कुल ही वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। अतः इसके परिणाम की वैधता पर किसी प्रकार का कोई शक नही किया जा सकता है।
2. इस प्रयोग विधि में प्रयोगकर्ता को परियोजन कम करना होता है तथा साथ ही साथ कोई विशेष नियंत्रण की जरूरत नही पड़ती है।

- स्वाभाविक प्रयोग विधि के दोष निम्न हैं:-

1. इस विधि में प्रयोगकर्ता को एक खास समय के लिए इन्तजार करना पड़ता है। जब तक कोई घटना घट नही जाती है वह प्रयोग नही कर सकता है। इसमे समय की काफी बर्बादी होती है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक इस विधि द्वारा भूकम्प के दौरान व्यक्तियों में होने वाले सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करना चाहता है। तो उसे उस समय तक इन्तजार करना होगा जब तक कि भूकम्प न हो।
2. इस तरह के प्रयोग में प्रयोज्य का चयन कोई वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रायः नही होता है। जो कोई भी मिल जाता है उसे प्रयोज्य बना लिया जाता है। इससे परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं और उस पर निर्भरता भी कम हो जाती है।
3. इस तरह के प्रयोग में अनिश्चितता अधिक होती है। प्रयोगकर्ता को यह पहले से मालूम नही रहता कि अमुक स्वभाविक परिस्थिति कब उत्पन्न होगी। जैसे - प्रयोगकर्ता को यह पहले से मालूम नही रहता कि अमुक समय में भूकम्प आयेगा या अमुक समय में कर्मचारियों की पदोन्नति होगी। फलस्वरूप, वह प्रयोग के बारे में कोई वैज्ञानिक कार्यक्रम तैयार नही कर पाता। जिसमें प्रयोग के परिणाम पर बुरा असर पड़ता है।

3.4 प्रेक्षण विधि

समाज मनोविज्ञान में प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिक जब अध्ययन किये जाने वाले चर में जोड़-तोड़ नही कर पाते, तो वे इस विधि का सहारा लेते हैं। प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः एक स्वभाविक परिस्थिति में करता है। प्रेक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रेक्षक

व्यक्तियों के व्यवहारों को एक खास समय तक कभी हल्का हस्तक्षेप करते हुए, तथा कभी बिना किसी तरह के हस्तक्षेप किये ही देखता तथा सुनता है। उनका एक रिकार्ड तैयार करता है। जिसकी बाद में विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।

परिभाषाएँ -

यंग (1954) के अनुसार ''प्रेक्षण-नेत्रो द्वारा सावधानी से किये गये अध्ययन को व्यवहार, सामाजिक संस्थाओं और किसी पूर्ण वस्तु को बनाने वाली पृथक इकाईयों का प्रेक्षण करने के लिए एक विधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।''

गुडे एवं हाट (1954) के अनुसार ''विज्ञान प्रेक्षण से ही प्रारम्भ होता है और अंत में अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रेक्षण का ही सहारा लेता है।''

इसकी विभिन्न उपविधियों का वर्णन करने से पहले हमें उन तीन पहलुओं को समझना आवश्यक हो जाता है, जो सभी तरह के प्रेक्षण में पाये जाते हैं बिकमैन (Bickman 1976) के अनुसार वे तीन पहलू निम्नांकित हैं:-

1. छिपाव की मात्रा:- समाज मनोवैज्ञानिकों को प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार के अध्ययन करने में इस बात का निर्णय करना होता है कि प्रेक्षक का परिचय अन्य व्यक्तियों से जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है, गुप्त रखा जाये या बता दिया जाये।
2. प्रेक्षक की भूमिका:- समाज मनोवैज्ञानिक को या शोधकर्ता को यह भी निर्णय करना होता है कि प्रेक्षण को अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है की सामाजिक अन्तःक्रियाओं के साथ हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं।
3. प्रेक्षक प्रक्रियाओं में संगठन की मात्रा:- शोधकर्ता को यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि प्रेक्षण का स्वरूप संगठित होगा या असंगठित होगा। असंगठित प्रेक्षण में प्रेक्षक के लिए अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है, के साथ हुए अनुभव द्वारा प्राप्त विचार ही काफी होते हैं परन्तु संगठित प्रेक्षण में व्यक्तियों के व्यवहारों की सार्थकता की जांच प्रेक्षक अन्य ढंग से भी करता है।

➢ **प्रेक्षण के प्रकार:-**

- रिस (Reiss, 1971) ने प्रेक्षण को वैज्ञानिक सूचनाएं उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर दो भागो में बांटा है –
    1. अक्रमबद्ध प्रेक्षण
    2. क्रमबद्ध प्रेक्षण

1. अक्रमबद्ध प्रेक्षण:- अक्रमबद्ध प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन मात्र अपने दिन-प्रतिदिन के अनुभवों के ही आधार पर कर लेता है। प्रेक्षण करने में वह न तो कोई स्पष्ट नियम को ही अपनाता है और न ही किसी वैज्ञानिक तार्किक क्रम पर अपने प्रेक्षण को आधारित करता है। जैसे - जब कोई शोधकर्ता बस में

बैठे व्यक्तियों के भीड़-व्यवहार का अचानक प्रेक्षण करना शुरू कर देता है तो यह अक्रमबद्ध प्रेक्षण का एक उदाहरण होगा। इस तरह के प्रेक्षण का उपयोग समाज मनोविज्ञान में बहुत कम किया जाता है।

2. क्रमबद्ध प्रेक्षण:- क्रमबद्ध प्रेक्षण में, जैसा कि रिस ने कहा है, प्रेक्षण का आधार एक निश्चित तथा स्पष्ट नियम होता है ताकि इस तरह के प्रेक्षण की पुनरावृत्ति की जा सके। इस तरह के प्रेक्षण की नियमावली एक वैज्ञानिक एवं तार्किक क्रम पर आधारित होती है। जैसे - यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिकों बच्चों में आक्रमणशीलता का अध्ययन करने के लिए उन्हें एक खास जगह ले जाता है और अपने पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार कुछ इस प्रकार की क्रियाओं की शुरूआत करता है जिनमें बच्चे एक-दूसरे के प्रति आक्रमणशीलता दिखा सके तो यह क्रमबद्ध प्रेक्षण का उदाहरण होगा। समाज मनोविज्ञान में क्रमबद्ध प्रेक्षण का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

- प्रेक्षक द्वारा की गयी भूमिका के अनुसार समाज मनोवैज्ञानिको ने प्रेक्षण विधि को दो भागो में बांटा है।
    1. सहभागी प्रेक्षण
    2. असहभागी प्रेक्षण

1. सहभागी प्रेक्षण:- इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह की क्रियाओं में स्वंय हाथ बंटाता है और उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता है। सचमुच में यहां प्रेक्षक का उद्देश्य व्यवहारों का ठीक ढंग से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण करना होता है और इस ख्याल से ही चह समूह की क्रियाओं में हाथ बंटाता है। प्रायः प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहार के हर पहलू के बारे में अपना विस्तृत रिकार्ड तैयार करता है और बाद में उसका विश्लेषण करता है। इस विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह का पूर्णकालीन सदस्य भी बन कर कार्य कर सकता है या अंशकालीन सदस्य बनकर भी कार्य कर सकता है। चाहे उसकी सदस्यता जिस प्रकार की हो, वह सक्रिय रूप से समूह की क्रियाओं में भाग लेता है। जब प्रेक्षक भी भूमिका के बारे में व्यक्तियों को पता नही होता है, तो उसे प्रच्छत्त सहभागी प्रेक्षण और जब लोगों को प्रेक्षक की भूमिका के बारे में पता होता है तो उसे अतिप्रच्छन्त सहभागी प्रेक्षण कहा जाता है। सहभागी प्रेक्षण प्रायः असंरचित या असंगठित होता है। दूसरे दूसरों में, इस विधि में प्रेक्षक को इस बात की छूट होती है कि वह स्वंय ही यह निश्चय करे कि उसे क्या प्रेक्षण करना है। उसे कैसे रिकार्ड करना है, आदि इस तरह की प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक अपना परिचय सदस्यों में प्रायः छिपा कर रखता है या वह कोई ऐसे भूमिका अपना कर समूह में प्रवेश करता है। जिससे प्रेक्षण किये जाने वाले सामाजिक व्यवहार का पैटर्न प्रभावित न हो। लेकिन यह कोई जरूरी नही है कि वह अपना परिचय हमेशा छिपाकर ही रखे। हां इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब व्यक्तियों को पता नही होता है कि उनके बीच कोई एक प्रेक्षक भी है जो उनके व्यवहारों का प्रेक्षण कर रहा है, तो वह बिल्कुल ही स्वभाविक ढंग से व्यवहार करता है। उसके भिन्न-भिन्न व्यवहारों के पैटर्न में कोई दिखावापन नही होता है।

- सहभागी प्रेक्षण के प्रमुख गुण निम्न हैं:-

1. इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण एक स्वभाविक संदर्भ में करता है। फलस्वरूप, वह व्यक्तियों के प्रत्येक व्यवहारिक पहलू जिससे किसी व्यवहार का विशेष अर्थ समझा जा सकता है, को सही-सही रिकार्ड कर उसका विश्लेषण करने में समर्थ होता है। इससे उसके परिणाम की सार्थकता काफी बढ़ जाती है।
2. प्रायः यह देखा गया है कि सहभागी प्रेक्षण कई दिनो तक चलता है। परिणाम स्वरूप, इससे जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वे काफी विस्तृत तथा अर्थपूर्ण होती है। उनका विश्लेषण करने से प्राप्त परिणाम प्रश्नावली विधि में प्राप्त सूचनाओं से मिले परिणाम से कहीं अधिक अर्थपूर्ण होता है।

- प्रेक्षण विधि के दोष निम्न हैं:-

1. चूंकि प्रेक्षक इस विधि में समूह की क्रियाओं में सक्रिय भाग लेता है। जबकि वह जानता है कि उसे इन क्रियाओं से कोई मतलब नही है इसलिए धीरे-धीरे वह समूह में अपना एक विशेष पद बना लेता है और अपनी सक्रियता कम कर देता है। परिणाम स्वरूप, वह वास्तव में बहुत सी सामाजिक अन्तःक्रियाओं को रिकार्ड करना ही भूल जाता है और इस तरह से उसका प्रेक्षण दोषपूर्ण हो जाता है। इतना ही नही, वह अपनी विशेष भूमिका द्वारा समूह के पूरे सदस्यों के व्यवहार के पैटर्न को ही कभी-कभी बदल देता है।
2. प्रेक्षक धीरे-धीरे अपनी मानवीय कमजोरियों को दिखाना शुरू कर देता है। प्रायः यह देखा गया है कि कुछ समय के बाद प्रेक्षक समूह के अन्य व्यक्तियों के साथ सावंगिक रूप से उलझ जाता है। वह किसी दुखद घटना के होने पर अन्य सदस्यों के साथ सहानुभूति दिखलाने लगता है। व्यक्तियों के व्यवहार पर इन घटनाओं के प्रभाव को रिकार्ड करना भूलकर वह अपना समय सहानुभूति दिखलाने में व्यर्थ बर्बाद कर देता है। जितना ही सांवेगिक उलझन का स्तर अधिक होता है। इसके प्रेक्षण से आत्मनिष्ठता उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।
3. सहभागी प्रेक्षण से प्राप्त आंकड़ो में माननीकरण कम होता है। इसका कारण यह है कि धीरे-धीरे प्रेक्षक का अनुभव इस हद तक बदल जाता है कि वह व्यक्तियों के व्यवहारों का सही-सही प्रेक्षण नही कर पाता। फलस्वरूप दूसरे प्रेक्षक द्वारा किया गया प्रेक्षण पहले प्रेक्षक के प्रेक्षण से काफी भिन्न हो जाता है।
4. सहभागी प्रेक्षण में चूंकि प्रेक्षक किसी तरह का जोड़-तोड़ नही कर सकता, अतः उसे उस समय तक इन्तजार करना होता है जब तक कि सदस्यों द्वारा अमुक तरह की सामाजिक अन्तःक्रिया स्वंय न कर ली जाये। इसमें समय की काफी बर्बादी होती है। यह अवगुण असहभागी प्रेक्षण के साथ भी सही उतरता है।

2. असहभागी प्रेक्षण:-असहभागी प्रेक्षण द्वारा भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह के सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया है। असहभागी प्रेक्षण वह विधि है जिसमें प्रेक्षक किसी सामाजिक व्यवहार का प्रेक्षण स्वभाविक परिस्थिति में करता है। परन्तु प्रेक्षण किये जाने वाले व्यवहारों या क्रियाओं को करने मे वह हाथ नहीं बंटाता है। इस तरह का प्रेक्षण संगठित या संरचित होता है। फलस्वरूप प्रेक्षक पहले से इस बात की पूर्वयोजना बना लेता है कि स्वभाविक परिस्थिति का स्वरूप कैसा होगा, प्रेक्षकों की उपस्थिति

से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान कैसे किया जा सकता है आंकड़ो में कहां तक सादृश्यमूलता होगी, आदि। इस तरह से हम देखते हैं कि असहभागी प्रेक्षण सहभागी प्रेक्षण से भिन्न है। इन दोनों में प्रमुख विभिन्नता निम्न है।

i. यद्यपि सहभागी प्रेक्षण तथा असहभगी प्रेक्षण दोनों ही स्वभाविक परिस्थितियों में ही किये जाते हैं। फिर भी पहले तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों की क्रियाओं के साथ सक्रिय भाग लेता है। जबकि दूसरे तरह के प्रेक्षण में वह ऐसी क्रियाओं के साथ भाग नही लेता है। निष्क्रिय रूप से वह इन क्रियाओं का मात्र प्रेक्षण करता है।

ii. सहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक का परिचय प्रायः छिपा रहता है। परन्तु असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक प्रायः व्यक्तियों के समूह के बीच बैठकर उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करता है। अतः उनका परिचय छिपा रहने का प्रश्न ही नही उठता है। हां, कुछ ऐसे अध्ययन समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा अवश्य किये गये जिनमें असहभागी प्रेक्षण की विधि तो अपनायी गयी हैं परन्तु साथ ही साथ प्रेक्षक एक तरफा, शीशे के पीछे छिपा रहता है। जहां वह सभी व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण तो करता है परन्तु उसे कोई नही देख पाता है।

iii. सहभागी प्रेक्षण असंगठित या असंचरित होता है। जबकि असहभागी प्रेक्षण संगठित या सरंचित होता है।

समाज मनोविज्ञान में असहभागी प्रेक्षण विधि का उपयोग प्रायः संवर्ग तंत्र के सहारे किये गया। संवर्ग तंत्र विधि में प्रेक्षक किसी दिये हुए व्यवहार की बारंबारता को एक विशेष सामाजिक अन्तःक्रिया के दौरान रिकार्ड करता है। सबसे महत्वपूर्ण संवर्ग तंत्र का विकास बेल्ज ने किया जिसे अन्तःक्रिया प्रक्रिया विश्लेषण की संज्ञा दी गयी है। बेल्ज ने इस तंत्र में कुल बारह प्रकार के प्रेक्षणों का रिकार्ड किया। जिसे बेल्स ने चार प्रमुख भागों में बांटा है -

1- सामाजिक सांवेगिक धनात्मक क्षेत्र

2- सामाजिक सांवेगिक ऋणात्मक क्षेत्र,

3- कार्यक्षेत्र प्रश्न तथा

4- कार्यक्षेत्र उत्तर।

इस संवर्ग तंत्र में प्रेक्षक व्यक्तियों के छोटे समूह में बैठकर उनकी अन्तःक्रियाओं का प्रेक्षण उपयुक्त संवर्ग में करता है। बाद में कलैण्डर्स ने बेल्जा की इस अन्तःक्रिया प्रक्रिया विश्लेषण का अनुकूलन वर्ग में छात्र-शिक्षक अन्तःक्रियाओं का प्रेक्षण करने के लिए किया। कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि असहभागी प्रेक्षण कभी भी पूर्ण रूपेण असहभागी नही हो सकता है। प्रेक्षक को किसी न किसी ढंग से व्यक्तियों के साथ कार्य में कुछ न कुछ हिस्सा अवश्य बांटना पड़ता है। अतः असहभागी प्रेक्षण को गुडे तथा हाट ने अर्ध असहभागी प्रेक्षण कहा है।

- असहभागी प्रेक्षण के गुण निम्न हैं:-

1. असहभागी प्रेक्षण चूंकि संरचित या संगठित होता है, इसलिए इससे प्राप्त आंकड़े अधिक विश्वसनीय निरूपक तथा निर्भर योग्य होते हैं। संरचित होने से प्रेक्षक प्रेक्षण के भिन्न-भिन्न पहलुओं के बारे में अच्छी तरह से सोंच-विचार करता है और उसमें संबंधित प्रक्रियाओं के बारे में पहले से एक निर्णय कर रखता है।
2. असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक सामाजिक व्यवहार के किसी विशेष पहलू पर अधिक ध्यान दे पाता है तथा उसमें संबंधित जांच प्रश्नों का समाधान ढूंढ़ने के लिए उसे अधिक से अधिक अवसर भी मिलता है। इसलिए कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे सहभागी प्रेक्षण की तुलना में अधिक वैकल्पिक माना है।

- असहभागी प्रेक्षण के प्रमुख अवगुण निम्न हैं:-

1. असहभागी प्रेक्षण का सबसे बड़ा दोष जो कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है, वह यह है कि इस तरह के प्रेक्षण में व्यक्तियों का व्यवहार जिनका प्रेक्षण किया जा रहा है बिल्कुल स्वभाविक नही होता है क्योंकि व्यक्तियों के मन में हमेशा यह बात रहती है कि उनके व्यवहार का प्रेक्षण किया जा रहा है। परन्तु यह आलोचना सभी समाज मनोवैज्ञानिकों को मान्य नही है। कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह आलोचना बहुत महत्वपूर्ण नही है क्योकिं दो, तीन दिन के बाद व्यक्तियों का व्यवहार बिल्कुल ही सामान्य एवं स्वभाविक हो जाता है। इतना ही नही, ऐसा कोई प्रयोगात्मक सबूत नहीं है जिसके आधार पर कहा जाये कि असहभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक की उपस्थिति से अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार की स्वभाविकता प्रभावित होती है। ब्लैक एवं चैम्पियन के अनुसार ‘‘अभी तक कोई ऐसा सबूत नही है जिसके आधार पर यह कहा जाये कि असहभागी प्रेक्षक की उपस्थिति का कुप्रभाव अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार पर पड़ता है।’’
2. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह भी कहा है कि जिस तरह सहभागी प्रेक्षण में परिस्थिति बिल्कुल स्वभाविक होती है, उसी तरह की परिस्थिति असहभागी प्रेक्षण में नही हो पाती हैं। इस परिस्थिति में उस्थित सभी व्यक्ति इस बात से काफी सचेत रहते हैं कि कोई अजूबार व्यक्ति उसके बीच है जो पता नही क्या-क्या देख रहा, सुन रहा है तथा समझ रहा है।

3.5सर्वेक्षण विधि

सर्वेक्षण विधि के द्वारा मुख्य रूप से सामाजिक तथा शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि इस विधि का प्रयोग 18वीं शताब्दी में ही कर लिया गया था तथापि इसकी महत्ता अधिक होने के कारण आज भी प्रचलन में है। Survey शब्द Sur (sor) + vey (veeir) दो दूसरों से मिलकर बना है जिसका मौलिक अर्थ ’ऊपर से देखना’ या ’ऊपर से अवलोकन’ करना है।

परिभाषा:-

करलिंगर (1973) के अनुसार ‘‘सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक, वैज्ञानिक अंवेषण की वह शाखा है जिसके अंतर्गत छोटे और बड़े समष्टियों (जनसंख्याओं) से चयन किये गये प्रतिदर्शा के माध्यम से सापेक्षिक घटनाओं, वितरणों तथा सामाजिक तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।’’

सर्वेक्षण विधि का प्रयोग समष्टि से चुने गये प्रतिदर्श की सहायता से किया जाता है। यह प्रतिदर्श यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा चुना जाता है अतः इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। ऐसे अनुसंधान का उद्देश्य एक निश्चित समय में अधिक से अधिक सूचनाएं इकट्ठी करना होता है। समाज मनोविज्ञान में सर्वेक्षण अनुसंधान की सहायता से मनोवृत्ति, जनमत, सामूहिक व्यवहार, प्रचार तथा राष्ट्रीय एकता आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

3.5.1 सर्वेक्षण के प्रकार -

- करलिंगर (1973) के सर्वेक्षण विधि के उपयोग के आधार पर निम्न प्रकारों का उल्लेख किया है-

1. निरीक्षण सर्वेक्षण (**Observatin Survey**):- ऐसे सर्वेक्षण का प्रयोग निरीक्षण विधि की सहायता से किया जाता है।
2. टेलीफोन सर्वेक्षण (**Telephone Survey**):-टेलीफोन की सहायता से किया गया सर्वेक्षण टेलीफोन सर्वेक्षण कहलाता है। इस सर्वेक्षण का लाभ टेलीफोन की सुविधा वाली अध्ययन इकाइयों तक ही सीमित है। इसके अंतर्गत गहन और विस्तृत सूचनाएं तो प्राप्त नहीं हो पाती लेकिन दूर-दूर स्थित अध्ययन इकाईयों से शीघ्र सूचनाएं मिल जाती हैं।
3. सामयिक सर्वेक्षण (**Penal Survey**):- अध्ययनकर्ता के एक से अधिक होने पर ही इस सर्वेक्षण का प्रयोग किया जाता है।
4. साक्षात्कार सर्वेक्षण (**Interview Survey**):- व्यक्तिगत साक्षात्कार विधि की सहायता से यह सर्वेक्षण किया जाता है इसमें साक्षात्कार प्रश्नावली का निर्माण कर अध्ययन समस्या से संबंधित आंकड़ों को इकट्ठा कर उनका विश्लेषण कर समस्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। मनोवृत्ति, नेतृत्व, जनमत आदि से सम्बन्धित समस्या के समाधान में यह विधि प्रयुक्त होती है।
5. डाक प्रश्नावलीसर्वेक्षण (**Mail Questionnaire Survey**):-इस प्रकार के सर्वेक्षण में अध्ययन समस्या से सम्बन्धित प्रश्नावली बनाकर अध्ययन इकाईयों के पास डाक द्वारा भेजी जाती है।

3.5.2 सर्वेक्षण विधि के मुख्य पदः-

1- अध्ययन समस्या को निष्चित रूप प्रदान करना (**To specify the Problem**):-

क- समस्या के उद्देश्य निर्धारित करना।

ख- समस्या के अध्ययन हेतु विधि का चयन।

ग- अध्ययन योजना की रूपरेखा का निर्धारण।

2- प्रतिचयन योजना (**Sampling Plan**):-

क- सम्पूर्ण जनसंख्या का निर्धारण।

ख- अध्ययन इकाईयों की संख्या निर्धारित करना।

ग- प्रतिचयन की योजना तथा योजना लागू करना।

3- साक्षात्कार प्रश्नावलीका निर्माण (**Construction of Interview Questionnaire**)

4- आंकड़ो को इकट्ठा करना (**Data colletion**):-

क- उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करना।

ख- घटनास्थल का निरीक्षण करना।

ग- क्षेत्र कार्यकर्ताओं का चयन और जांच करना।

घ- आंकड़ो का संग्रहण

5- आंकड़ो का निश्लेषण (**Analysis of Data**):-

क- प्रत्युत्तरों को संकेत प्रदान करना

ख- प्रत्युत्तरों की सारणी बनाना

ग- अन्तर्वस्तु का विश्लेषण

6- प्रतिवेदन लिखना (**Writing the Report**)

3.5.3

3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण का महत्व:-

1. इस विधि की सहायता से समाज मनोविज्ञान की समस्याओं का विस्तृत और गहन अध्ययन सम्भव है।
2. सर्वेक्षण अनुसंधान में यादृच्छिक प्रतिचयन का उपयोग होने के कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय, शुद्ध और वैज्ञानिक होते हैं।
3. अन्य विधियों की तुलना में यह विधि अधिक सरल, सुविधाजनक और आर्थिक दृष्टि से भी सुलभ है।

3.5.4 सामाजिक सर्वेक्षण की सीमाएं:-

1. इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय शोधकर्ता के मनोभावों का प्रभाव अध्ययन पर पड़ता है।
2. हर समस्या का अध्ययन करने में अध्ययन इकाईयां यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा चुनी गयी हो ऐसा सम्भव नहीं है।
3. सर्वेक्षण विधि द्वारा कम समय में अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जिससे समस्या के सम्बन्ध में गहरी जानकारी प्राप्त नही हो पाती।

4. सर्वेक्षण विधि में प्रश्नावली का निर्माण तथा क्रियान्वयन से सम्बन्धित कठिनाई भी आती है। यदि प्रश्नावली का निर्माण ठीक प्रकार हो भी जाये तो लोगों द्वारा दिये गये उत्तर लापरवाही पूर्ण होने पर परिणामों की विश्वसनीयता और वैधता समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वेक्षण विधि में कुछ कठिनाइयां होते हुए भी शैक्षिक तथा सामाजिक समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण इस विधि द्वारा सम्भव है इस कारण समाज मनोविज्ञान की यह एक महत्वपूर्ण विधि है।

3.6 वैयक्तिक अध्ययन विधि

वैयक्तिक अध्ययन विधि के अंतर्गत सामाजिक इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप की खोज तथा उसकी विवेचना के सम्बन्ध में सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया जाता है। दूसरे दूसरों में सामाजिक इकाई के स्वरूप के आधार पर पर्याप्त सूचनाएं एकत्र करके भूत और वर्तमान करके समंवित करके गुणात्मक अध्ययन किया जाता है।

परिभाषाएँ:-

बर्गेस के अनुसार ‘‘वैयक्तिक अध्ययन विधि सामाजिक सूक्ष्म दर्शक यंत्र है।’’

सिन पाओ यंग (1953) के अनुसार ‘‘वैयक्तिक अध्ययन विधि को एक छोटे, सम्पूर्ण और गहन अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसमें अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का व्यवस्थित संकलन करने के लिए अपनी समस्त क्षमताओं और विधियों का ऐसे उपयोग करता है कि यह स्पष्ट हो सके कि एक स्त्री या पुरूष समाज की इकाई के रूप में कैसे कार्य करते हैं।’’

1. वैयक्तिक अध्ययन विधि की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:-

a. सम्पूर्ण अध्ययन (**Whole Study**):- इस अध्ययन विधि में इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। गुडे एवं हाट (1952) का मत है कि इस अध्ययन विधि में ‘‘किसी सामाजिक इकाई के सभी रूपों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाता है।’’ अर्थात् सामाजिक इकाई के जीवन और संगठन सम्बन्धी सभी तथ्यों का अध्ययन किया जाता है।

b. गुणात्मक अध्ययन (**Qualitative Syudy**):-इस विधि के द्वारा जो आंकड़े प्राप्त होते हैं वे संख्या के रूप में न होकर दूसरों के रूप में होते हैं। इस प्रकार प्राप्त आंकड़ो का सांख्यिकीय विश्लेषण न होने पर अध्ययन इकाई के सम्बन्ध में जो खोजपरक विवेचना की जाती है वह बहुत महत्वपूर्ण होती है।

c. गहन अध्ययन (**Intensive Study**):-वैयक्तिक अध्ययन विधि में अध्ययन छोटा होता है लेकिन सूक्ष्म और गहन होता है।

d. व्यक्तिगत अध्ययन (**Individual Study**):-वैयक्तिक अध्ययन विधि की इस विशेषता के अंतर्गत किसी एक ही इकाई का किसी एक समय में अध्ययन किया जाता है। यह इकाई जाति, परिवार, संस्था घटना या

आदत आदि हो सकती है। गुडे एवं हाट (1952) के अनुसार "इसमें किसी सामाजिक इकाई के समस्त रूपों का व्यक्तिगत अध्ययन किया जाता है।"

e. बहुपक्षीय अध्ययन (**Multidirectional Study**):- इसविधि के द्वारा होने वाले बहुपक्षीय अध्ययन के अंतर्गत इकाई के विकास से सम्बन्धित अनेक कारकों जैसे- सामाजिक कारक, आर्थिक कारक, पर्यावरणीय कारक, जैविक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक की खोज, मूल्यांकन तथा विवेचना की जाती है।

2. वैयक्तिक अध्ययन विधि के लाभ (**Advantages of Case Study Method)** :-

a. सूक्ष्म अध्ययन (**Microscopic Study**):-वैयक्तिक अध्ययन चिधि में अध्ययन इकाई के सभी पहलुओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण कर अध्ययन किया जाता है। इसीलिए बर्गेस ने इस विधि को Social Microscope कहा है।

b. गहन अध्ययन (**Intensive Study**):-इस विधि के द्वारा सामाजिक इकाई का गहन अध्ययन अनेक स्त्रोतो से सूचना प्राप्त कर, तथ्यों को संकलित कर किया जाता है।

c. मानव स्वभाव की व्याख्या मे सहायक (**Helpful in Interpreting in human nature**):-इस विधि की सहायता से मानव के स्वभाव की जितनी सूक्ष्म व्याख्या होती है उतनी अन्य किसी विधि से नहीं।

d. अभिवृत्तियों के विकास के अध्ययन में सहायक (**Helpful in the study of development of attitudes**):-इस विधि द्वारा अभिवृत्तियों के विकास का सूक्ष्मतम ढंग से अध्ययन किया जाता है।

e. लचीली अध्ययन विधि (**Flexible Study method**):-इस विधि में अन्य विधियों तथा तथ्यों के संकलन हेतु यंत्रो का आवश्यकतानुसार प्रयोग होने के कारण यह विधि काफी लचीली है।

f. इस विधि में अन्य विधियों के उपयोग की सुविधा (**Facility of using other methods**):-इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय केस स्टडी प्रपत्र के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर निरीक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली तथ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता भी ली जा सकती है।

3. वैयक्तिक अध्ययन विधि के दोष तथा सीमाएं (**Disadvantages and Limitations of Case Study Method**):-

a. सीमित अध्ययन इकाईयां (**Limited Study units**):-इस विधि में अध्ययन इकाईयों की संख्या एक या केवल कुछ इकाईयों तक ही सीमित रहती है। जिसके फलस्वरूप इसमें दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

b. प्रामाणिक विधि का अभाव (**Lack of Standard Procedure**):-इस विधि में चूंकि अनेक विधियों तथा तथ्यों के संकलन हेतु यंत्रो का उपयोग होता है इसलिये वैयक्तिक अध्ययन विधि की प्रक्रिया के पद भिन्न-भिन्न अध्ययनों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। शोधकर्ता के अनुभवी न होने के कारण उसे अध्ययन विधि की प्रक्रिया सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है।

c. मात्रात्मक आंकड़ो का अभाव (**Lack of Quantitativedata**):-इस विधि में तथ्य लम्बे तथा विवरण के रूप में होते हैं। मात्रात्मक आंकड़ो के अभाव में तथ्यों का विश्लेषण ठीक ढंग से नहीं हो पाता।
d. अधिक खर्चीली विधि (**More expensive method**):-इस विधि का उपयोग करते समय अन्य विधियों की जरूरत पड़ने पर सहायता ली जाती है जिससे समय व धन अधिक खर्च होता है।
e. प्रतिचयन का अभाव (**Lack of sampling**):-इस विधि में अध्ययन इकाइयों की संख्या कम होने के कारण प्रतिचयन विधि का चुनाव कठिन हो जाता है। सही प्रतिचयन विधि के अभाव में अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है।
f. अवैज्ञानिक विधि (**Unscientific Method**):-इस विधि में अध्ययन इकाईयों की संख्या सीमित होने, आंकड़ो का स्वरूप गुणात्मक होने तथा प्रतिचयन का अभाव होने के कारण यह विधि कम वैज्ञानिक कम है और शोधकर्ता के अनुभवों तथा कुशलता पर अधिक निर्भर होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैयक्तिक अध्ययन विधि के अंतर्गत एक सामाजिक इकाई के सम्पूर्ण स्वरूप की खोज तथा इसका गहन और सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है।

3.7 समाजमिति विधि

समाजमिति मनोविज्ञान की ऐसी विधि है जिसका प्रयोग केवल समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में ही होता है। समाजमिति का शाब्दिक अर्थ है सामाजिक मापन (Social Measurement) इस विधि के अंतर्गत अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों का मापन करने वाली विधियां आती हैं। इसके अतिरिक्त समूह, संरचना, संप्रेषण, नेतृत्व, समूह सम्बन्धशीलता (Group Cohesiveness) आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में यह विधि बहुत उपयोगी है। इस विधि का विकास मौरनो ने 1934 में किया।

परिभाषाएँ:-

करलिंगर (1978) ने समाजमिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि *''समाजमिति एक विस्तृत पद है जिससे अनेक विधियों का संकेत मिलता है। इन विधियों के द्वारा व्यक्तियों के चयन, सम्प्रेषण और अंतःक्रिया प्रतिमानों से सम्बन्धित आंकडो का संकलन और विश्लेषण किया जाता है।''*

बेस्ट (1982) के अनुसार *''समाजमिति समूह में व्यक्तियों के मध्य पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का वर्णन करने की एक विधि है। परोक्ष रूप से यह व्यक्तियों के मध्य आकर्षण तथा विकर्षण का वर्णन उनसे यह पूछकर करने का प्रयत्न करती है कि विभिन्न परिस्थितियों में वे किन लोगों का चयन करेंगे या त्याग करेंगे।''*

न्यूकाम्ब (1942), टग्यूरी (1952), प्रेपिन (1952), तलबोट (1952), लिन्डजे (1954) ने इस विधि से सम्बन्धित अनेक तकनीकों का विकास किया है।

3.7.1 समाजमिति निश्लेषण की प्रविधियां (Techniques of Sociometric Analysis):-

समाजमिति विश्लेषण की प्रमुख प्रविधियां निम्नलिखित हैं:-

1- समाज आलेख तकनीक 2- समाजमिति मैट्रिक्स

1. **समाज आलेख तकनीक:-** समूह के व्यक्तियों की संख्या कम होने पर मैट्रिक्स विधि बहुत उपयोगी होती है, किंतु जब व्यक्तियों की संख्या अधिक हो तो मैट्रिक्स विधि से विश्लेषण करना कठिन हो जाता है तब समाज आलेख की सहायता ली जाती है। इसे निर्देशित ग्राम (Directed graph) भी कहते हैं। इस तकनीक के माध्यम से व्यक्ति के अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन समाज आलेख बनाकर किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम समूह के प्रत्येक व्यक्ति को तीर द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। फिर एक तीर उस व्यक्ति के वृत्त तक खींचा जाता है जिसे वह पहला व्यक्ति पसंद करता है।

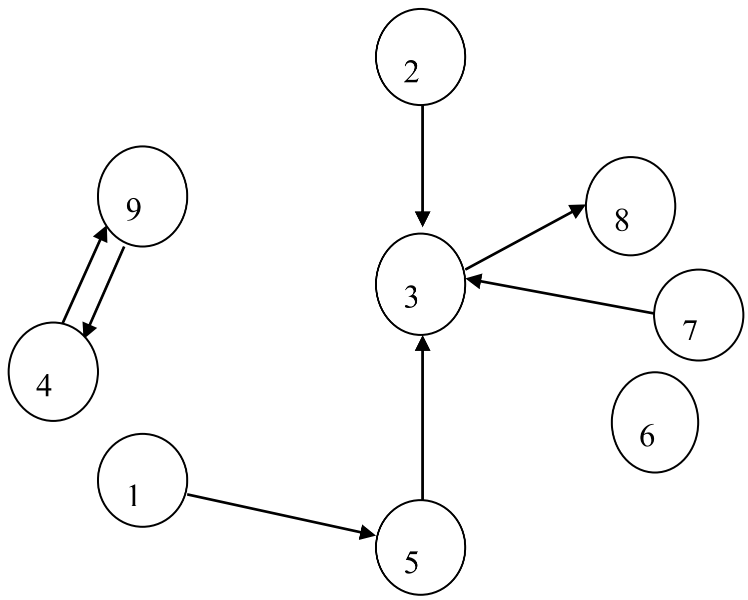

उदाहरणार्थ, यदि पहले व्यक्ति से पूछा जाये कि वह किस व्यक्ति को पसंद करता है और वह कहे कि मैं दूसरे व्यक्ति को पसंद करता हूं तो पहले व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक तीर का निशान बना दिया जाता है जो ऊपर बने समाज आलेख में दिखाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति से यह प्रश्न दूसरे प्रकार से भी पूछ सकते हैं कि वह अपने समूह में किसे नेता चुनेंगे व्यक्ति जो उत्तर देगा उस व्यक्ति से तीर का निशान उस व्यक्ति तक लगाया जायेगा जिसे वह नेता चुनना पसंद करता है। इस प्रकार समूह के प्रत्येक व्यक्ति से प्रश्न कर उसकी पसंदो को वृत्तों के मध्य तीर से निशान लगाकर अंकित किया जाता है। वृत्तों और तीर से बने चित्र को तकनीकी भाषा में समाज आलेख कहते हैं। समाज आलेख में जिस व्यक्ति को सबसे ज्यादा पसंद किया जाता है वह व्यक्ति ही नेता कहलाता है। एक

समूह में एक से अधिक नेता भी हो सकते हैं। समूह में जिस व्यक्ति को नेता के बाद चुना जाता है उसे गौण नायक कहते हैं। समूह में उसे 'Isolate Person' कहा जाता है, जिसे कोई पसंद नही करता या जो किसी को पसंद नहीं करता। जब व्यक्ति आपस में एक दूसरे को चुनते हैं तो इसे 'Mutual pair' कहते हैं। जब एक समूह में कुछ सदस्य आपस में एक इकाई को चुनते हैं तथा अन्य आपस में एक दूसरे को चुनते हैं तो ऐसे सम्बन्धों को तकनीकी भाषा में जत्था या गुट कहते हैं।

2. **समाजमिति मैट्रिक्स:-** इस प्रविधि द्वारा भी अंतः वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। मैट्रिक्स संख्याओं का क्रम आयताकार होता है। यहां पर n = व्यक्तियों की समूह में संख्या होती है। इसमें पंक्ति (row) को i तथा स्तंभो (Column) को 1 से व्यक्त करते हैं। मैट्रिसेज से किसी समूह में उसके सदस्यों द्वारा व्यक्ति की चयनित संख्या का पता चलता है। उदाहरणार्थ, माना 4 छात्रों की कक्षा से यह प्रश्न पूछा जाता है कि "आप किन छात्रों के साथ बैठना पसंद करोगे चुनाव कीजिए।'' यदि छात्र किसी एक छात्र को चुनता है तो 1 तथा न चुनने पर 0 अंक दिया जाता है।

<u>सदस्यों के प्रति पसंद</u>

सदस्य	A	B	C	D
A	1	0	0	1
B	0	0	0	0
C	0	1	0	1
D	1	0	0	0
Total	2	1	0	2

इस मैट्रिक्स को देखने से स्पष्ट है कि समूह के व्यक्ति आपस में एक दूसरे के प्रति किस प्रकार की पसंद रखते हैं।

3.7.2 समाजमिति प्रविधियों के लाभ:-

1. विश्वसनीय अध्ययन:-इस विधि में शोधकर्ता स्वंय तथ्यों का संग्रह कुछ प्रश्नो के आधार पर करता है। अतः प्राप्त हुए तथ्य विश्वसनीय होते हैं।
2. मितव्ययी विधि:-शिक्षा, उद्योग सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानो में व्यक्ति के अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों पारस्परिक पसंद नापसंद का अध्ययन समाजमिति प्रविधियों द्वारा कम खर्च में किया जा सकता है।
3. पारस्परिक पसंद-नापसंद का अध्ययन:- समाजमिति प्रविधियों द्वारा समूह के व्यक्तियों की पारस्परिक पसंद-नापसंद का अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

4. पारस्परिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन:-इस विधि द्वारा व्यक्ति की परस्पर होने वाली अंतःक्रिया का अध्ययन भी किया जा सकता है।
5. तथ्यों की वस्तुपरक अभिव्यक्ति:- इस प्रविधि में तथ्यों की वस्तुपरक अभिव्यक्ति चाहे तथ्यों को समाज आलेख के रूप में प्रस्तुत करें चाहे समाजमिति मैट्रिक्स के रूप में प्रस्तुत किया जाये, पायी जाती है।

3.7.3 समाजमिति प्रविधियों के दोष:-

1. गहन अध्ययन असम्भव:- इस विधि द्वारा सामाजिक अंतःक्रियाओं पारस्परिक पसंदों-नापसंदों आदि का गहन अध्ययन इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि अध्ययन एक या कुछ प्रश्नों के उत्तरों पर ही आधारित होता है।
2. केवल छोटे समूहों का अध्ययन:- समूहों में सदस्यों की संख्या 40-50 से अधिक न हो तभी इस विधि का उपयोग किया जा सकता है। समूह में सदस्यों की संख्या अधिक होने पर इस विधि की उपयोगिता कम होती जाती है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान में अंतः वैयक्तिक अध्ययनों आकर्षण और विकर्षण आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त समूह, संरचना, नेतृत्व सम्प्रेषण आदि से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में समाजमिति विधि बहुत उपयोगी है।

3.8 सारांश

इस तरह से हम देखते हैं कि समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग तीन उपविधियों के रूप में किया गया है। यद्यपि तीन उपविधियो के अपने-अपने गुण दोष हैं। फिर भी आधुनिक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला प्रयोग विधि को सबसे ज्यादा पसन्द करते हैं। हां, जहां इस विधि का प्रयोग करने से पूरी असमर्थता उत्पन्न हो जाती है वहां वे क्षेत्र प्रयोग विधि का सहारा लेते हैं। जहां तक स्वाभाविक प्रयोग विधि का प्रश्न है इसकी बारम्बरता इसमें व्याप्त कुछ कठिनाइयों के कारण काफी कम है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेक्षण विधि का प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिक सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में सहभागी या असहभागी रूप में करते है। इस विधि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेक्षक उचित विधि अपनाकर सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करता है या नहीं। सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण में मौन उचित होना, इस बात पर निर्भर करता है कि किस सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किस तरह की परिस्थिति में किस उद्देश्य से किया जा रहा है। सामान्यतः समाज मनोवैज्ञानिक सहभागी प्रेक्षण का उपयोग उसी परिस्थिति में अधिक करते हैं, जब वे किसी दूसरे स्रोत से आंकड़ो का संग्रहण नही कर सकते हैं।

3.9शब्दावली

- **चर:** चर वह गुण है जिसके विभिन्न मूल्य होते हैं।

- **स्वतंत्र चर:** स्वतंत्र चर वह राशि है जिसे प्रयोगकर्ता किसी घटना से सम्बन्धित करने के लिए घटाता बढ़ाता है।
- **आश्रित चर:** आश्रित चर स्वतंत्र चर का अनुमानित प्रभाव है।

3.10स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रयोग विधि वह है जिसमें:-

(i) परिकल्पना का निरीक्षण किया जाता है।

(ii) चरों को योजना अनुसार प्रहस्तन कर निरीक्षण लेते हैं।

(iii) कार्य कारण सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।

(iv) नियंत्रित दशाओं में निरीक्षण होता है।

(v) उपर्युक्त सभी

2- प्रेक्षण पूछताछ की श्रेष्ठ विधि है’। क्योंकि इसमें -

(i) नेत्रों का सहारा लिया जाता है।

(ii) कानों का सहारा लिया जाता है।

(iii) वाणी का सहारा लिया जाता है।

(iv) उपर्युक्त सभी

3- सर्वेक्षण अनुसंधान `में प्रतिदर्ष का चयन .... प्रतिचयन विधि द्वारा किया जाता है।

4- वैयक्तिक अध्ययन विधि .... है।

5- वैयक्तिक अध्ययन विधि में एक सामाजिक इकाई के .... का अध्ययन किया जाता है।

6- समाजमिति विधि के द्वारा -

(i) समाज में व्यक्ति की स्थिति का मापन किया जाता है।

(ii) व्यक्तियों के मध्य आकर्षण तथा प्रत्याकर्षण का मापन किया जाता है।

(iii) सामूहिक मनोबल का मापन किया जाता है।

7- समाजमिति विधि का विकास किस मनोवैज्ञानिक ने किया -

(i) मोरैनो (ii) बोगार्डस (iii) करलिंगर (iv) गुडे एवं हाट

8- समाज मनोविज्ञान की विभिन्न विधियों के द्वारा -

(i) केवल कुछ ही समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

(ii) प्रत्येक विधि से कुछ विशिष्ट प्रकार की समस्याओं का अध्ययन किया जा सकता है।

(iii) समाज मनोविज्ञान की सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

उत्तर : 1- (i) 2- (i) 3- यादृच्छिक 4- सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र 5- सम्पूर्ण स्वरूप
6- (ii) 7- (i) 8- (ii)

3.11संदर्भ ग्रन्थ सूची

Britt, S.H. : Social Psychology of Modern Life, Ch. 2

Chaube, S.P. (1966) : Manovigyan Aur Shiksha (Lakshmi Narain Agrawal, Agra) 7th Ed.

Gurnee, G. : Elements of Social Psychology, Ch. 2

Lindzey, G. : Hand Book of Social Psychology, Chs. 7, 10, 11, 12, 13 & 14, Vol. I

Murphy, G. : Experimental Psychology, Ch. 1

Newcomb, T.M.(1978): Social Psychology, Ch. 2

डॉ0 आर.एन. सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हापुड़ रोड, आगरा

डॉ0 अरूण कुमार सिंह (2009) : समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल वनारसी दास, वनारस

3.12निबन्धात्मक प्रश्न

1- प्रयोगात्मक विधि का वर्णन उसके गुण दोषों सहित कीजिए।
2- प्रेक्षण विधि तथा प्रयोगात्मक विधि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
3- सर्वेक्षण विधि को गुण दोषों सहित विस्तार से समझाइए।
4- वैयक्तिक अध्ययन विधि को विस्तार से समझाइए।
5- समाजमिति विधि को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-4 मनोवृत्ति का अर्थ, प्रकृति और मनोवृत्ति के घटक
(Meaning, Nature and Components of Attitude)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य
4.3 मनोवृत्ति की विभिन्न परिभाषाएँ
4.4 मनोवृत्ति के प्रकार
4.5 मनोवृत्ति की विशेषताएँ
4.6 मनोवृत्ति एवं सम्बन्धित संप्रत्यय
4.6.1 मनोवृत्ति तथा विष्वास
4.6.2 मनोवृत्ति एवं मूल्य
4.6.3 मनोवृत्ति तथा मत
4.7 मनोवृत्ति के मुख्य घटक
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य को समाज में रहते हुए विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं का सामना करना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर वह अपनी प्रतिक्रिया भी करता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति वस्तु अथवा विचार के प्रति प्रतिक्रिया करने की तत्परता को ही मनोवृत्ति कहते हैं। मनोवृत्ति का सम्बन्ध मानव व्यवहार के आन्तरिक या मानसिक पक्ष से है। मनोवृत्ति एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में हमेशा करते हैं। साधारण अर्थ में मनोवृत्ति मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह समाज की विभिन्न परिस्थितियों, वस्तुओं, व्यक्तियों आदि के प्रति अपने विचार व मनोभाव को प्रकट करता है। ऊंची जाति के लोग हरिजनों के प्रति एक विशिष्ट विचार रखते हैं उसी तरह से विधवा विवाह तथा बाल विवाह के प्रति भी लोग एक खास मनोभाव रखते हैं। इन उदाहरणों में जिस विशिष्ट विचार या मनोभाव को बताया गया है उसे ही साधारण अर्थ में मनोवृत्ति कहते है।

मनोवृत्ति शब्द अंग्रेजी भाषा के Attitude शब्द का रूपान्तर है जो लैटिन भाषा के “Aptus” शब्द से बना है। जिसका अर्थ है तत्परता (readiness) अथवा मानसिक झुकाव (set)। इस प्रकार मनोवृत्ति का शाब्दिक अर्थ हुआ व्यवहार करने की तत्परता या मानसिक झुकाव। केवल शाब्दिक अर्थ से मनोवृत्ति की विभिन्न विशेषताएं, इसके विभिन्न घटकों आदि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में, मनोवृत्ति के शाब्दिक अर्थ से मनोवृत्ति

का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। इसलिए आवश्यक है कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को परिभाषित करने के लिए जिन तीन दृष्टिकोणों को आधार बनाया है, दृष्टिपात कर लिया जाये। इन तीन दृष्टिकोणों का वर्णन निम्नलिखित है:-

1- एक विमीय दृष्टिकोण (One-dimensional Approach):-

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति के एक विमा अर्थात् मूल्यांकन पक्ष (evaluative aspect) को ध्यान में रखकर उसे परिभाषित किया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति एक ऐसी सीखी गयी प्रवृत्ति (tendency) है, जिसके कारण व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या व्यक्तियों के समूह के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से व्यवहार करता है। फिशबीन तथा आजेन (1975) के अनुसार ''किसी वस्तु के प्रति संगत रूप से अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से अनुक्रिया करने की अर्जित पूर्व प्रवृत्ति को मनोवृत्ति कहते है।''

थर्सटन (1946) के अनुसार ''किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के पक्ष या विपक्ष में धनात्मक या ऋणात्मक भाव की तीव्रता को मनोवृत्ति कहते हैं।'' मनोवृत्ति के इन एकविमीय परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति के भाव की तीव्रता और दिशा ही मनोवृत्ति का सार है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस मूल्यांकन विमा को भावात्मक संघटन (affective component) कहा है।

2- द्विविमीय दृष्टिकोण (Two-dimensional Approach):-

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति की व्याख्या करने हेतु दो विमाओं (dimensional) का सहारा लिया गया है - भावात्मक संघटक (Affective component) तथा संज्ञानात्मक संघटक (Cognitive component)। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को इन दोनों तरह के संघटकों का योग माना है। भावात्मक संघटक का तात्पर्य किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति के प्रति सुखद या दुखद भाव की तीव्रता से होता है। सुखद भाव होने पर हम उस वस्तु, व्यक्ति या घटना को पसन्द करते हैं, जबकि दुखद भाव होने पर हम उन्हें नापसंद करते हैं। संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य किसी घटना का वस्तु के सम्बन्ध में व्यक्ति में जो विश्वास होता है, उससे होता है। जैसे - हरिजनों के प्रति ऊंची जाति के लोगों में एक खास विश्वास होता है यह विश्वास संज्ञानात्मक संघटक का उदाहरण है। इस द्विविमीय दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक तथा भावनात्मक संघटक का एक संगठन है। उदाहरणार्थ – 'व्यवसायी धनी होते हैं' यह एक संज्ञानात्मक संघटक का उदाहरण है तथा 'व्यवसायी साफ-सुथरे होते हैं' यह भावनात्मक संघटक क्या उदाहरण है। दोनों मिलकर व्यवसायी के प्रति एक अनुकूल मनोवृत्ति उत्पन्न कर सकते हैं जिसकी अभिव्यक्तिव्यवसायी अच्छे होते हैं, के रूप में हो सकती है।

3- त्रिविमीय दृष्टिकोण (Three-dimensional Approach):-

आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति की व्याख्या त्रिविमीय दृष्टिकोण के आधार पर की है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति के पहले से चले आ रहे दो संघटकों में एक तीसरा संघटक अर्थात व्यवहारात्मक संघटक

(behavioral component) को जोड़कर इसकी व्याख्या की गई है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के इस विचार को अधिकांश लोगों ने मान्यता प्रदान की है।

इनका विचार है कि मनोवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक (cognitive component) भावात्मक संघटक (affective component) तथा व्यवहारात्मक संघटक (behavioral component) का एक संगठित तंत्र (organized system) है। इसे आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिको ने मनोवृत्ति का ABC मॉडल कहा है। यहां A से भावात्मक संघटक (affective component), B से व्यवहारात्मक संघटक (behavioral component) तथा C से संज्ञानात्मक संघटक (cognitive component) का बोध होता है।

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जैसे काट्ज तथा स्टॉटलैण्ड (1959), राजेकी (1982), फेल्डमैन (1986) तथा मेयर्स (1988) ने भी मनोवृत्ति को इन्हीं तीनों संघटकों का स्थायी संगठित तंत्र (enduring organized system) माना है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि मनोवृत्ति के इन तीनो संघटकों की कुछ खास विशेषताएं होती है जिनके स्वरूप को समझना मनोवृत्ति के अर्थ को पूर्ण रूप से समझने में सहायक सिद्ध होता है। ये विशेतषताएं जिनका सम्बन्ध मनोवृत्ति के तीनो संघटकों से है, निम्नलिखित हैं:-

1) **बहुविधता (Multiplexity):-**मनोवृत्ति के तीनों संघटकों में बहुविधता का गुण पाया जाता हा। बहुविधता का अर्थ है कि किसी संघटक में उसके तत्वों की संख्या कितनी है। दूसरे दूसरों में, संघटक की बहुविधता का गुण यह बताता है कि अमुक संघटक कितने तत्वों से मिलकर बना है। संघटक में जितने अधिक तत्व होगें, उसमें जटिलता भी उतनी ही अधिक होगी। जैसे सहशिक्षा के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक में कई तथ्य तथ्य शामिल हो सकते हैं, जैसे - सहशिक्षा किस स्तर से शुरू होनी चाहिए। सहशिक्षा के क्या फायदे हैं आदि आदि। उसी तरह भावात्मक संघटक तथा संज्ञानात्मक संघटक में भी तत्वों की संख्या एक से अधिक हो सकती है।
2) **कर्षण शक्ति (Valence):-** मनोवृत्ति के तीनों संघटक में कर्षण शक्ति होती है। कर्षण शक्ति का अर्थ मनोवृत्ति की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता की मात्रा से है। संज्ञानात्मक संघटक अधिक अनुकूल तथा प्रतिकूल हो सकता है। दूसरे दूसरों में व्यक्ति का विश्वास मनोवृत्ति वस्तु के प्रति कम या अधिक अनुकूल तथा कम या अधिक प्रतिकूल हो सकती है। उसी प्रकार भावात्मक संघटक में भी कम या अधिक धनात्मक कर्षण शक्ति तथा कम या अधिक नकारात्मक कर्षण शक्ति हो सकती है। उसी प्रकार से व्यवहारात्मक संघटक में भी कम या अधिक कर्षण शक्ति हो सकती है। व्यक्ति किसी समस्या या घटना होने पर व्यक्ति की हर सम्भव मदद कर सकता है या फिर इन सबसे पूर्णतः छुटकारा पाने का हरसंभव प्रयास कर अपने आपको दूर रख सकता है।
3) **संगति विशेषता (Consistency Charateristics):-** समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने भिन्न-भिन्न अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि मनोवृत्ति के तीनों संघटकों में संगति पायी जाती है। इस तरह की

संगति मूल रूप से संघटकों की कर्षण शक्ति में अधिक पाई जाती है परन्तु बहुविधता में कम से कम पाई जाती है।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मनोवृत्ति 3 संघटकों अर्थात संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित स्थाई तंत्र है। तीनो संघटकों में संगति का गुण पाया जाता है। इसी गुण के कारण व्यक्ति किसी वस्तु अथवा घटना के प्रति खास ढंग से सोचता है और व्यवहार करने के लिए तत्पर रहता है।

4.2 उद्देश्य

इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- मनोवृत्ति के अर्थ, प्रकृति तथा परिभाषा के बारे मे जान सकेंगे।
- मनोवृत्ति की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- मनोवृत्ति के घटको के बारे में जानने का अवसर प्राप्त होगा।

4.3 मनोवृत्ति की विभिन्न परिभाषाएँ

आलपोर्ट (1935) के अनुसार ‘‘मनोवृत्तियां तत्परता की ऐसी मानसिक तथा स्नायुविकअवस्था है जो अनुभव के द्वारा संगठित होती है और व्यक्ति की उन समस्त वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति अनुक्रियाओं पर निर्देशात्मक अथवा गत्यात्मक प्रभाव डालती है, जिनसे वे सम्बन्धित होती हैं।’’

किम्बल यंग (1960) के अनुसार ‘‘आवश्यक रूप से मनोवृत्ति पूर्ण ज्ञान रूपी प्रतिक्रिया का स्वरूप और क्रिया का आरम्भ है, जिसका पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रतिक्रिया की इस तत्परता में किसी प्रकार की विशिष्ट या सामान्य परिस्थिति निहित रहती है।’’

क्रेच, क्रेचफील्ड तथा बेलैची (1962) के अनुसार ‘‘मनोवृत्ति को व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार प्रतिबिम्बित करता है। यह किसी सामाजिक वस्तु के प्रति धनात्मक या ऋणात्मक मूल्यांकनों, संवेगात्मक भावों तथा पक्ष या विपक्ष के क्रियात्मक झुकावों की अपेक्षाकृत स्थायी पद्धतियां हैं।’’

सीकोर्ड तथा बैकमैन (1964) के अनुसार ‘‘अपने वातावरण के कुछ पक्षों के प्रति व्यक्ति के नियंत्रित भाव, विचार और कार्य करने की पूर्व वृत्ति ही मनोवृत्ति कहलाती है।’’

आइजनेक (1972) के अनुसार ‘‘सामान्यतः मनोवृत्ति की परिभाषा किसी वस्तु या समूह के सम्बन्ध में प्रत्यक्षात्मक बाह्य उत्तेजनाओं की उपस्थिति में व्यक्ति की स्थिति और प्रत्युत्तर तत्परता के रूप में की जाती है।’’

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ’’किसी व्यक्ति वस्तु या उत्तेजना अथवा इसके समूहों के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति की प्रत्यक्षात्मक और ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्थायी संगठन तथा प्रत्युत्तर तत्परता के मिले जुले रूप को ही मनोवृत्ति कहते हैं।’’ इस परिभाषा से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति किसी के

सम्बन्ध में हो सकती है अर्थात मनोवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति विचार अथवा उत्तेजना आदि के सम्बन्ध में हो सकती है। मनोवृत्तियां किसी व्यक्ति के अनुभव ज्ञान एवं प्रत्याक्षात्मक प्रक्रियाओं का स्थायी संगठन है और प्रत्युत्तर तत्परता का मिला-जुला रूप है। अनुभव, ज्ञान और प्रत्यक्षात्मकता में परिवर्तनों के साथ-साथ मनोवृत्तियां भी परिवर्तित हो जाती हैं। मां के हृद्य में अपने बच्चे के संरक्षण की मनोवृत्ति होती है, जिसके कारण वह रोते हुए बच्चे के पास सब काम छोड़कर दौड़ी हुई आती है और रोते हुए बच्चे को गोद में उठा लेती है और उसे चुप करने का हरसंभव प्रयास करती है। मनोवृत्तियों का व्यक्ति के समायोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक जीवन में ही इन मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। मनोवृत्तियां व्यक्ति की अर्जित विशेषताएं हैं। यही उसके सामाजिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्रिया का आधार है। क्रेन्च तथा क्रचफील्ड के अनुसार ''मनोवृत्तिसों के व्यक्ति में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हैं। यह व्यक्तित्व को निरन्तरता प्रदान करती है। यह उसेक दैनिक प्रत्यक्षीकरण और प्रक्रियाओं को अर्थपूर्ण बनाकर उनके विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है।''

4.4 मनोवृत्ति के प्रकार

a. व्यक्ति के द्वारा किसी वस्तु कारक के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं के स्वरूप के आधार पर मनोवृत्ति दो प्रकार की होती है:-

1- सकारात्मक मनोवृत्ति

2- ऋणात्मक मनोवृत्ति

1- सकारात्मक मनोवृत्ति:-

जब व्यक्ति की किसी भी परिस्थिति, वस्तु, घटना आदि के पक्ष में प्रतिक्रिया की जाती है तो उसे सकारात्मक मनोवृत्ति कहते हैं। यह व्यक्ति के पक्ष में तथा विकास में सहायक होती है।

2- ऋणात्मक मनोवृत्ति:-

जब व्यक्ति किसी वस्तु घटना या परिस्थिति के विपक्ष में प्रतिक्रिया करता है तो उसे ऋणात्मक मनोवृत्ति कहते हैं। यह वस्तु या व्यक्ति के लिए हानिकारक होती है।

b. **आलपोर्ट** के अनुसार मनोवृत्तियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं:-

1- सामाजिक मनोवृत्तियां:-

इस प्रकार की मनोवृत्तियों का निर्माण समाज की उत्तेजनात्मक परिस्थितियों के कारण होता है। इस प्रकार की मनोवृत्तियाँ एक समूह विशेष या व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होती है।

2- विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति मनोवृत्तियां:-

इस प्रकार की मनोवृत्तियां व्यक्ति कुछ विशेष लोगों के प्रति या जान पहचान के लोगों के प्रति रखता है जैसे परिवार, मित्र और पड़ोसियों के प्रति आदि।

3- विशिष्ट समूहों के प्रति मनोवृत्तियां:-

इस प्रकार की मनोवृत्तियां व्यक्ति कुछ विशेष समूहों या संस्थाओं के प्रति रखता है। जैसे - विद्यालय, कार्यालय, कारखाना, धर्म और जाति आदि।

4.5 मनोवृत्ति की विशेषताएँ

a) मनोवृत्ति की सामान्य विशेषताएँ(Common Characteristics of Attitude):

मनोवृत्ति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें होती है और उनके द्वारा इसके बारे में कुछ अर्थपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। मनोवृत्ति की कुछ ऐसी ही विशेषतायें निम्न हैं:-

1- मनोवृत्ति को अपेक्षाकृत स्थायी माना गया है- मनोवृत्ति एक बार विकसित हो जाने के बाद सामान्यतः स्थायी सी हो जाती है। लेकिन परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण या कुछ नये कारणों के उत्पन्न होने पर मनोवृत्ति में परिवर्तन भी हो जाता है। उदाहरणार्थ जब एक किरानी की मनोवृत्ति अपने आफीसर के प्रति सामान्यतः अनुकूल होती है। परन्तु यदि उसी आफीसर से उसका मनमुटाव या नाराजगी हो जाती है तो उसकी मनोवृत्ति बदलकर प्रतिकूल हो जाती है।

2- मनोवृत्ति सीखी जाती है- मनोवृत्ति जन्मजात नही होती है बल्कि उसे व्यक्ति जीवनकाल में ही सीखता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में तरह-तरह की अनुभूतियां प्राप्त करता है तथा इन अनुभूतियों के आधार पर वह एक अनुकूल या प्रतिकूल मनोवृत्ति अपने में विकसित करता है। ऐसा नहीं होता है कि व्यक्ति में किसी अन्य के विषय में किसी घटना के प्रति अमुक मनोवृत्ति जन्म से ही पायी जाती है।

3- मनोवृत्ति का सम्बन्ध लगातार किसी विषय, घटना या विचार आदि से होता है- मनोवृत्ति एक ऐसा मनोभाव है जिसका सम्बन्ध किसी विषय, घटना या विचार से होता है। दूसरे दूसरों में और मनोवृत्ति की उत्पत्ति होने के लिये कोई न कोई विषय घटना या विचार का होना अनिवार्य होता है। जैसे व्यक्ति सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, अन्र्तजातीय विवाह, भारत अमेरिका सम्बन्ध, आदि के बारे में कोई प्रतिकूल या अनुकूल मनोवृत्ति विकसित करता है। क्योंकि यह सभी विषय और घटना महत्वपूर्ण है। ऐसा देखा गया है कि यदि कोई विषय या घटना विवादग्रस्त होती है तो व्यक्ति बहुत जल्दी अपने अनुकूल और प्रतिकूल मनोवृत्ति विकसित कर लेता है।

4- मनोवृत्ति विशिष्ट दिशा में निर्देशन करती है- मनोवृत्ति व्यक्ति के व्यवहारों को एक निश्चित दिशा में निर्देशित करती है। जब व्यक्ति की मनोवृत्ति किसी विषय, घटना या अन्य व्यक्ति के प्रति अनुकूल रहती है और वह खास ढंग से व्यवहारिक रहता है और जब उसकी मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है तो वह दूसरे ढंग से व्यवहार करता है। उदाहरणार्थ जब व्यक्ति की मनोवृत्ति विधवा विवाह के प्रति अनुकूल होती है तो वह इस तरह के विवाह

को सम्पन्न करने में सक्रिय रहता है और दूसरी तरफ जब उसकी मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है तो वह इस तरह के विवाह के विपक्ष में तर्क देता है तथा ऐसी विधवाओं से घृणा भी करता है जिन्होने शादी करने की ठान रखी है।

5- मनोवृत्ति में तीव्रता का गुण होता है- ऐसा देखा गया है कि मनोवृत्ति चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल हो उसमें तीव्रता का गुण होता है। उदाहरण के लिए जब एक मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रतिकूल होती है तब सम्भव है कि प्रतिकूल मनोवृत्ति रखने वाला व्यक्ति उस दूसरे व्यक्ति के साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, बोलना-चालना आदि बन्द कर देता है, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह खाना-पीना ही बंद करता है, उठना-बैठना व बोलना कायम रखता है। यहां पहले व्यक्ति की प्रतिकूल मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति की प्रतिकूल मनोवृत्ति की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है।

6- मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होता है- अध्ययनों से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण भी होते हैं। व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर कुछ विशेष व्यवहार अधिक तत्परता से करता है। उदारणार्थ - माता-पिता, शिक्षक, मित्र आदि के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति होने के कारण हम अधिक सौहार्दपूर्ण कार्य करते हैं। दूसरी तरफ, चोर, डकैत, शत्रु आदि के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति के कारण हम कटु व्यवहार करते हैं।

इस तरह से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति की कुछ खास विशेषताएं होती हैं जिनके आधार पर उसके बारे में एक सही व अर्थपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

b) **मनोवृत्ति की मौलिक विशेषताएँ** (Primary characteristics of Attitudes) :

1- मनोवृत्ति संघात में अन्तर्सम्बन्धता- मनोवृत्ति संघात का अभिप्राय एक व्यक्ति की सभी मनोवृत्तियों की श्रृंखला से है। एक व्यक्ति के अन्दर पाई जाने वाली अनेक मनोवृत्तियां एक दूसरे से सम्बन्धित भी हो सकती है और पृथक भी हो सकती है। अध्ययनों से देखा जा सकता है कि मनोवृत्ति के पुंज होते हैं। एक व्यक्ति में मनोवृत्ति के कई-कई पुंज हो सकते हैं। मनोवृत्ति के यह पुंज बड़े भी हो सकते हैं और छोटे भी। साथ ही एक पुंज की मनोवृत्तियों में अन्तर्सम्बन्ध कम से साधारण और उच्च कोटि तक किसी भी मात्रा की हो सकती है।

2- घटकों की विशेषताएँ- मनोवृत्ति के 3 घटक होते हैं 1- संज्ञान, 2- भाव, 3- क्रिया। यह तीनों घटक विभिन्न मनोवृत्तियों में कर्षण शक्ति और बहु विधता की दृष्टि से अलग-अलग होते हैं। अतः मनोवृत्ति के तीनों घटकों में कर्षण शक्ति व बहुविधता का गुण पाया जाता है। इसमें कर्षण शक्ति से तात्पर्य है कि मनोवृत्ति के तीनो घटक अत्याधिक अंश से कम अंश तक किसी मात्रा में हो सकते हैं। बहुविधता का अर्थ है कि मनोवृत्ति के प्रत्येक घटक के कई-कई घटक और होते हैं।

3- मनोवृत्ति पुंज और अनुरूपता- मनोवृत्ति पुंजों में पायी जाने वाली मनोवृत्ति में कुछ न कुछ समानता या अनुरूपता अवश्य पायी जाती है। एक मनोवृत्ति पुंज की मनोवृत्ति में यह समानता कम से अधिक तक किसी भी मात्रा मे हो सकती है। सदिका में कैम्पबैल (1960) ने स्पष्ट किया कि जिन व्यक्तियों के मनोवृत्ति पुंज में समानता

अधिक है, वह मतदान के सम्बन्ध में निर्णय शीघ्र लेते हैं। कैम्पबेल का यह अध्ययन राजनैतिक व्यवहार से सम्बन्धित मनोवृत्ति के सम्बन्ध में था।

4- **संगति विशेषता-** उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति के तीन घटक संज्ञान, भाव और क्रिया की कर्षण शक्ति में संगीत होता है तथा विभिन्न मनोवृत्ति घटकों की कर्षण शक्ति में उच्च सह संबंध होता है। यह सभी अध्ययन नीग्रो एवं यहूदियों पर किये गये है। एक अध्ययन में यहूदियों की मनोवृत्ति मापन के लिये मनोवृत्ति मापन का विकास किया गया। इस मापन में कुछ मापनियां संज्ञानात्मक घटक की कर्षण शक्ति का मापन तथा अन्य क्रियात्मक घटक की कर्षण शक्ति का मापन करती हैं। इस मापन में सह सम्बन्ध गुणांक की गणना की गई। इन मापनियों के बीच 0.74 से 0.84 तक गुणांक का मान प्राप्त हुआ। यह मान उच्च सहसम्बन्ध का द्योतक है।

4.6 मनोवृत्ति एवं सम्बन्धित संप्रत्यय

मनोवृत्ति का सम्बन्ध कुछ खास संप्रत्ययों से अधिक है। अतः इसकी उचित जानकारी के लिए मनोवृत्ति का सही अन्तर उन सम्बन्धित संप्रत्ययों के साथ करना आवश्यक है। मनोवृत्ति के साथ कुछ इसी तरह के संप्रत्यय जैसे - विश्वास, मूल्य व मत आदि के सम्बन्धों का वर्णन निम्नांकित है –

4.6.1 मनोवृत्ति तथा विष्वास (Attitude and Belief) :

मनोवृत्ति का सम्बन्ध विश्वास से अधिक है। इन दोनों के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक है कि इन दोनां के अर्थ को सही समझा जाए। विश्वास को इस तरह परिभाषित किया गया है, ’व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते है।’’ विभिन्न वर्णनों से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति के तीनों संघटकां अर्थात संज्ञानात्मक संघटक, भावात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित तंत्र है। क्रेच एवं क्रच फील्ड (1948) के अनुसार ’’व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते हैं।’’ मार्गन किंग, व्हिज एवं स्कॉपलर (1986) के अनुसार ‘‘वस्तुओं के गुणों के बारे में जो विचार या संज्ञान होते हैं उन्हें विश्वास कहते हैं।’’ विश्वास की परिभाषाओं तथा मनोवृत्ति की परिभाषाओं से पाया है कि विश्वास तथा मनोवृत्ति एक दूसरे से काफी समान हैं। प्रमुख समानतायें निम्न हैं:-

1. मनोवृत्ति के समान विश्वास भी विभिन्न संघटकों का एक स्थायी संगठन है।
2. मनोवृत्ति के सामन विश्वास भी संज्ञानात्मक संघटक होते हैं।

इन समानताओं के बाद भी मनोवृत्ति व विश्वास में निम्न अंतर है:-

1. मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होते हैं जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति कुछ विशेष प्रतिक्रियाएं करता है। परन्तु विश्वास में प्रेरणात्मक गुण हमेशा देखने को नही मिलता है।

2. मनोवृत्ति वास्तविक तथ्य पर आधारित होती है परन्तु विश्वास काल्पनिक तथ्य पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ हमारा विश्वास है कि सूर्य एक तारा है परन्तु तारा क्या है, कैसा है, उसकी विशेषताएं क्या है यह सभी कुछ वैज्ञानिकों की कल्पना पर आज भी निर्भर है।
3. मनोवृत्ति में विश्वास की तुलना में परिवर्तन तेजी से आता है। ऐसा इसलिये होता है कि मनोवृत्ति का सम्बन्ध वास्तविक परिस्थितियों से अधिक होता है। परन्तु विश्वास एक बार कायम हो जाता है।
4. मनोवृत्ति का क्षेत्र विश्वास से बड़ा होता है क्योंकि मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक, प्रत्यक्षणात्मक तथा व्यवहारात्मक सभी तरह की प्रक्रियाओं का समावेश होता है जबकि विश्वास मूलतः संज्ञानात्मक एवं प्रत्यक्षणात्मक होता है।

4.6.2 मनोवृत्ति एवं मूल्य (Attitude and Value)-

मनोवृत्ति एवं मूल्य में समाज मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर किया है। सामान्यतः मूल्य से तात्पर्य एक ऐसे लक्ष्य से होता है जिसे प्राप्त करना समाज में काफी वांछित माना जाता है। इसमें व्यक्ति में एक सकारात्मक एवं नकारात्मक भाव भी शामिल होता है। वर्केल तथा कपूर (1979) के अनुसार ''मूल्य का अर्थ किसी वस्तु या विचार से संबंधित सकारात्मक या नकारात्मक भाव से होता है।''

मनोवृत्ति तथा मूल्य में एक समानता है। मनोवृत्ति तथा मूल्य दोनों ही अर्जित होते हैं। इस समानता के बावजूद भी इन दोनों में कुछ अन्तर निम्न प्रकार है:-

1. मनोवृत्ति तथा मूल्य दोनाके में ही भावात्मक पक्ष प्रधान होते हैं, परन्तु मूल्य में मनोवृत्ति की अपेक्षा भावात्मक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
2. मनोवृत्ति मूलतः 2 प्रकार के होते हैं - सकारात्मक तथा नकारात्मक। परन्तु मूल्य कई प्रकार के होते हैं - धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य आदि।
3. मान का निर्माण चूंकि कई वैयक्तिक मनोवृत्तियों के मिलने से होता है, अतः यह मनोवृत्ति की तुलना में अधिक स्थिर तथा स्थाई होता है।
4. ब्रौनफेनब्रनर (1960) ने अपने अध्ययनों में स्पष्ट किया है कि मूल्य या मान में आत्मीकरण का महत्व मनोवृत्ति में आत्मीकरण की अपेक्षा अधिक होता है।

4.6.3 मनोवृत्ति तथा मत (Attitude and Opinion)-

मनोवृत्ति तथा मत में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक मनोवृत्ति में एक मत निहित रहता है। इसलिये इन दोनों के बीच सम्बन्ध और गहरा हो जाता है। यहां पर मनोवृत्ति तथा मत के अर्थ को समझना आवश्यक है। मनोवृत्ति का अर्थ हम पहले समझ चुके हैं। मत के अर्थ की व्याख्या कुछ मनोवैज्ञानिकों ने निम्न प्रकार परिभाषित की है :-

सेकर्ड तथा बैकमैन (1964) के अनुसार, *''मत एक ऐसा विश्वास है जो कि व्यक्ति अपने वातावरण की कुछ वस्तुओं के प्रति रखता है।''*

चैपलिन (1975) के अनुसार *''मत एक विश्वास है, विशेषकर ऐसा विश्वास जो अस्थाई होता है तथा जिसमें परिमार्जन की संभावना बनी रहती है।''*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मत एक तरह का विश्वास ही है जो किसी वस्तु से सम्बन्धित होता है तथा जिसमें अस्थायीत्व का गुण होता है। मनोवृत्ति तथा मत दोनों में संज्ञानात्मक तत्व की भूमिका प्रधान होती है। इस समानता के बावजूद भी मनोवृत्ति तथा मत में निम्नांकित अन्तर है:-

1. मनोवृत्ति का निर्माण चेतन रूप से कम तथा अचेतन रूप से अधिक होता है। जैसे-जैसे किसी वस्तु या व्यक्ति के साथ अन्तःक्रियाएं अधिक होती है वैसे-वैसे व्यक्ति में अचेतन रूप से एक विशेष मनोवृत्ति का निर्माण होता है। परन्तु मत का निर्माण चेतन स्तर पर ही होता है।
2. व्यक्ति की क्रियाओं एवं व्यवहारों पर मनोवृत्ति का प्रभाव अधिक पड़ता है। परन्तु मत या विचार का प्रभाव उतना अधिक नही पड़ता है।
3. किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति को जानकर उस व्यक्ति द्वारा किसी खास परिस्थिति में किये व्यवहार को जानना आसान हो जाता है। इसके विपरीत किसी व्यक्ति के मत या विचार मात्र को जानकर ऐसा करना सम्भव नहीं है।
4. मत में सिर्फ संज्ञानात्मक तत्व होते हैं परन्तु मनोवृत्ति में संज्ञानात्मक तत्व के अलावा भावात्मक तत्व भी होते हैं।

दूसरे शब्दों में मनोवृत्ति में संवेग या भाव होता है जबकि मत में संवेग या भाव नहीं होता है। जैसे - किसी व्यक्ति का मत है कि भगवान का अस्तित्व है तो इसमें भगवान के रूप एवं कार्य के बारे में तरह-तरह के संज्ञानात्मक विचार हो सकते हैं। परन्तु इसमें किसी तरह का संवेग या भाव नहीं होता है। लेकिन यदि किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल होती है तो उसमें संवेग या भाव भी पाया जाता है।

4.7 मनोवृत्ति के मुख्य घटक

बैरन तथा वायरने (1979) के अनुसार विचारशील तथा अनुभवी व्यक्ति के रूप में हम अन्य लोगों जिनसे हम प्रतिदिन मिलते हैं उस सबके प्रति हम में से प्रत्येक व्यक्ति भिन्न प्रतिक्रियाएं रखता है यहीं प्रतिक्रियाएं मनोवृत्ति के मुख्य घटक हैं जो निम्नलिखित तीन प्रकारों की होती है:-

1. **भावात्मक:-**इसमें वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारी पसंद अथवा नापसन्द की भावना निहित होती है।
2. **संज्ञानात्मक:-** इसके अंतर्गत उन वस्तुओं या व्यक्तियों के बारे में हमारे विश्वास निहित होते हैं।

3. **व्यवहारात्मकः-**इसमें अन्य व्यक्तियों, समूहों तथा वस्तुओं के प्रति विशिष्ट प्रकार से कार्य करने की प्रवृत्ति निहित होती है।

लिण्डग्रेन (1979) ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि किसी भी मनोवृत्ति में इन तीनो अंगो में कोई भी एक अंग अधिक प्रबल हो सकता है। इस प्रकार कुछ मनोवृत्तियों में भावात्मक पक्ष अधिक होता है। ऐसी मनोवृत्तियो में भावनाओं की अभिव्यक्ति ही व्यवहार के रूप में होती है। अन्य मनोवृत्तियों में ज्ञानात्मक पक्ष अधिक होने पर और अधिक बौद्धिक होने के कारण यह पता लगाना कठिन होता है कि व्यक्ति किसी सामाजिक परिस्थिति में किस प्रकार का रूख अपनाएगा। वह इसे गुप्त भी रख सकता है। अन्य मनोवृत्तियो में व्यवहारात्मक या क्रियात्मक पक्ष अधिक हो सकता है। ऐसी मनोवृत्तियो में भावना तथा विश्वास की कमी पायी जाती है। ये तब दिखायी देते हैं जब आवश्यकताओं की आसानी तथा सीधे तौर पर पूर्ति सम्भव होती है। इसीलिए काट्ज तथा स्टाटलैण्ड (1959), बैरन तथा बायरने (1979) आदि के मत हैं कि मनोवृत्तियां अन्य व्यक्तियों, समूहों, विचारों अथवा वस्तुओं के प्रति भावनाओं, विश्वासों तथा व्यवहारात्मक प्रवृत्तियों के अपेक्षाकृत स्थायी संगठन को इंगित करती है।

4.8 सारांश

मनोवृत्ति के अर्थ और परिभाषा को जानने के बाद हम सारांश में यह कह सकते हैं कि मनोवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह व्यक्तियों, वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति अपने मनोभावों को प्रदर्शित करता है। मनोवृत्ति के अर्थ और परिभाषा को जानने के बाद हम सारांश में यह कह सकते हैं मनोवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होता है जिसके द्वारा वह व्यक्तियों, वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति अपने मनोभावों को प्रदर्शित करता है।

समाज मनोवैज्ञानिक में मनोवृत्ति से जो अर्थ लगाया जाता है वह साधारण अर्थ से कहीं अधिक वैज्ञानिक, निश्चित एवं वस्तुनिष्ठ है। समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मनोवृत्ति को परिभाषित करने के लिए 3 दृष्टिकोणो को अपनाया है एक विमीय दृष्टिकोण, द्विविमीय दृष्टिकोण तथा त्रिविमीय दृष्टिकोण। आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्तियों को परिभाषित करने में इस त्रिविमीय दृष्टिकोण पर ही अधिक बल डाला है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति तीन संघटको अर्थात् भावात्मक संघटक, व्यवहारात्मक संघटक तथा संज्ञानात्मक संघटक का एक संगठन होता है। इस दृष्टिकोण को मनोवृत्ति का ।ठब् मॉडल भी कहा जाता है। मनोवृत्तियों की विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार समझ सकते हैं। कि मनोवृत्ति का सम्बन्ध हमेशा किसी विषय, घटना या विचार आदि से होता है। मनोवृत्ति अर्जित तथा स्थाई होती है। मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक तथा तीव्रता का गुण होता है।

4.9शब्दावली

- **मनोवृत्ति:** किसी भी वस्तु, परिस्थिति, व्यक्ति या कारक के प्रति विशिष्ट प्रतिक्रिया मनोवृत्ति कहलाती है।
- **मानसिक तत्परता:**विशिष्ट प्रकार की मानसिक स्थिति को मानसिक तत्परता कहते हैं।
- **प्रेरणा:** एक प्रकार की आंतरिक शक्ति जिसके द्वारा व्यवहार संचालित होता हैख् को अभिप्रेरणा कहा जाता है।

4.10स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- निम्न में से मनोवृत्ति का सम्बन्ध किससे होता है -

(i) सिर्फ अमूर्त वस्तु से
(ii) दोनों तरह की वस्तु से
(iii) सिर्फ मूर्त वस्तु से
(iv) इनमें से कोई नहीं

2- मनोवृत्ति के सम्बन्ध में कौन सा कथन असत्य है -

(i) मनोवृत्ति विशिष्ट दिशा में निर्देशन करती है।
(ii) मनोवृत्ति में चिंतन का गुण पाया जाता है।
(iii) मनोवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
(iv) मनोवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होते हैं।

3- मनोवृत्ति के संगठकों में निम्न में से कौन सा संगठक नही माना जाता -

(i) संज्ञानात्मक संघटक (ii) कार्यात्मक संघटक
(iii) भावात्मक संघटक (iv) व्यवहारात्मक संघटक

उत्तर : (1) (ii) (2) (iii) (3) (ii)

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Cantril, H. (1946) : The Intensity of an Attitude, Journal of Abnorm. Soc. Psychol., p. 41

Droba, D.D. (1933) : The Nature of Attitude, pp. 444-463, J. of Social, Psychol., p.4

Krech, D. (1946) : Attitude and Learning, pp. 290-293, Psycho. Review, 53.

डा0 आर.एन.सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान,
अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा

Mishra Girishwar (2007) : Applied Social Psychology In India,
Sage, Publication New Delhi.

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोवृत्ति से आप क्या समझते हैं ? मनोवृत्ति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ?
2. मनोवृत्ति को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ?
3. मनोवृत्ति के मुख्य घटक कौन-कौन से हैं ?

इकाई-5 मनोवृत्ति का विकास और इसका मापन(Development of attitude and its Measurement)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मनोवृत्ति विकास में सहायक मुख्य कारक
5.3.1 सामाजिक सीखना
5.3.2 आवश्यकता पूर्ति
5.3.3 दी गयी सूचनाएं
5.3.4 समूह बंधन
5.3.5 रूढ़िकृतियां
5.3.6 व्यक्तित्व कारक
5.3.7 सांस्कृतिक कारक
5.3.8 सामाजिक सीखना और सामाजिक संस्थाएं
5.4सूचना एवं प्रसार
5.4.1 प्रत्यक्षात्मक कारक
5.4.2 प्रेरणात्मक कारक
5.5 मनोवृत्तियों का मापन
5.5.1 थर्स्टन मापनी विधि
5.5.2 लिकर्ट मापनी विधि

5.5.3 अर्थ भेदक मापनी विधि

5.5.4बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मनोवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति (accquired tendency) है जो व्यक्ति की आयु और अनुभवों के बढ़ने के साथ-साथ विकसित होती रहती है। मनोवृत्तियों का विकास एक महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि मनोवृत्तियां स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक है और एक व्यक्ति की मनोवृत्तियों से ही उसका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। एक समूह के सदस्यों की कुछ मनोवृत्तियां समान होती है तथा अन्य की अलग भी होती हैं। मनोवृत्तियां का निर्माण आवश्यकताओं की संतुष्टि की प्रक्रिया के संदर्भ में होता है। व्यक्ति का समूह सम्बन्ध (affiliation) उसकी मनोवृत्तियों के निर्माण तथा विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आप जान सकेगे:-

- मनोवृत्ति के विकास की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- मनोवृत्ति के मापन की मुख्य प्रविधियों को जानने का अवसर प्राप्त होगा।

5.3 मनोवृत्ति विकास में सहायक मुख्य कारक

मनोवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति है। इसके विकास में बहुत से कारकों का प्रभाव पड़ता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों से सम्बन्धित कई अध्ययन एवं प्रयोग किये हैं जिनके आधार पर निष्कर्ष रूप में ऐसे कारकों का वर्णन किया है जिससे मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। जो कारक व्यक्ति की मनोवृत्ति के विकास में सहायक हैं, उनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:-

5.3.1 सामाजिक सीखना (Social Learning):-

सामाजिक सीखना का प्रभाव मनोवृत्ति के विकास में बहुत अधिक पड़ता है। जिस प्रकार व्यवहार के अलग-अलग रूपों को व्यक्ति सीखता है ठीक वैसे ही मनोवृत्ति के विकास में सीखने की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार, स्कूल, मंदिर, चर्च, मस्जिद आदि ऐसी सामाजिक संस्थाएं हैं जो व्यक्ति को सामाजिक शिक्षण

देता है। आज व्यक्ति भिन्न-भिन्न जातियों के प्रति भिन्न मनोवृत्ति विकसित करता है। मर्फी तथ न्यूकाम्ब आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में सामाजिक सीखना के महत्व पर प्रकाश डाला है।

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि मनोवृत्ति के विकास में सीखने की तीन तरह की प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। ये तीन प्रक्रियाएं निम्नलिखित है:-

1- क्लासिकल अनुबंधन (Classical Conditioning)
2- साधनात्मक अनुबंधन (Instrumental Condioning)
3- प्रेक्षणात्मक सीखना (Observational Conditioning)

1) **क्लासिकल अनुबंधन:-** यह अनुबंधन सीखने का मुख्य सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपक को अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ बार-बार उपस्थित किया जाता है तो ऐसी स्थिति में कुछ समय बाद तटस्थ उद्दीपक में भी उसी तरह की अनुक्रिया करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि क्लासिकल अनुबंधन के इस नियम द्वारा हम रोजमर्रा की जिदंगी में अनेक नई-नई मनोवृत्तियां सीखते हैं। उदाहरणार्थ, एक बच्चा अपने पिता को बार-बार यह कहते सुनता है कि जर्मनी के व्यक्ति साहसी, मेहनती तथा ईमानदार होते हैं तो धीरे-धीरे उसके अंदर जर्मन व्यक्तियों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। आंरभ में 'जर्मन' शब्द उस बच्चे के लिये तटस्थ शब्द था जिसके प्रति उसके मन में किसी तरह की मनोवृत्ति नहीं थी। इस सम्बन्ध में स्टॅाटस तथा स्टॅाटस द्वारा किया गया प्रयोग काफी लोकप्रिय है। इन्होंने दो शब्द (जो राष्ट्रीयता बताते थे) को पर्दे पर प्रयोज्यों को दिखलाया। वे दो शब्द डच तथा स्वडिश थे। इसमें से एक राष्ट्रीयता शब्द दिखाने के बाद धनात्मक विशेषण जैसे - खुश, पवित्र, मेहनती आदि दूसरों का उच्चारण प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों के सामने करते थे तथा दूसरा राष्ट्रीयता शब्द दिखाने के पश्चात् ऋणात्मक विशेषण जैसे गंदा, कुरूप, तीखा आदि प्रयोज्यों के सामने प्रयोगकर्ता सुनाते थे। परिणाम में देखा गया कि उस राष्ट्रीयता शब्द के प्रति प्रयोज्यों में अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हुई जो धनात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किये गये थे तथा जिस राष्ट्रीयता शब्द को ऋणात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किया गया उसके प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति विकसित हो गयी। अतः इन प्रयोगों द्वारा स्पष्ट है कि इस नियम द्वारा मनोवृत्ति का विकास निश्चित रूप से होता है।

2) **साधनात्मक अनुबंधन:-** साधनात्मक अनुबंधन का नियम सीखने का दूसरा महत्वपूर्ण नियम है जिससे मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। साधनात्मक अनुकूलन का नियम इस बात पर जोर डालता है कि जिस अनुक्रिया के करने से व्यक्ति को पुरूस्कार मिलता है, उसे वह सीख लेता है तथा जिस अनुक्रिया को करने के फलस्वरूप दण्ड मिलता है, उसे वह दोहराना नहीं चाहता। बच्चों में ठीक वैसी ही मनोवृत्ति शीघ्रता से विकसित होती है जो उनके माता-पिता में होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि माता-पिता के समान

मनोवृत्ति दिखाने पर उन्हें पुरूस्कार के रूप में उनके व्यवहार की प्रशंसा, उन्हें चाकलेट, बिस्कुट आदि खाने के मिलते हैं। ठीक उसी तरह माता-पिता की मनोवृत्ति के विपरीत व्यवहार दिखाने पर उन्हें डांट और कभी-कभी शारीरिक दण्ड भी दिया जाता है। फलस्वरूप वे इस प्रकार की मनोवृत्ति विकसित नहीं कर पाते। मनोवृत्ति विकास में साधनात्मक अनुकूलन के महत्व को समझाने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किये हैं जिसमें इन्सको एवं मैल्सन (1969) ने अपने प्रयोगात्मक सबूतों द्वारा इस नियम की पुष्टि की है।

3) **प्रेक्षणात्मक सीखना:-** प्रेक्षणात्मक सीखना नियम के अंतर्गत व्यक्ति दूसरे की क्रियाओं को तथा उसके परिणामों को देखकर नई अनुक्रिया करना सीख लेता है। इस नियम का प्रतिपादन बैण्डुरा द्वारा किया गया है। समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्रेक्षणात्मक सीखने के नियम द्वारा बच्चे प्रायः वैसी मनोवृत्ति अपने अंदर विकसित करते है जिन्हें उनके माता-पिता स्वयं सीखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक पिता बेइमानी करते हुए अपने पुत्र को ईमानदारी का पाठ पढ़ाता है तो पुत्र पिता की बातों पर अधिक महत्व न देकर स्वंय भी बेईमानी करने की मनोवृत्ति विकसित कर लेता है क्योंकि वह अपने पिता की गलत तथा बेइमानी की आदतों का लगातार प्रेक्षण करता है। ब्राएन, रेडफील्ड तथा मैडर (1971) एवं रशटन (1975) ने इस नियम सम्बन्धी अनेक अध्ययन किये हैं।

5.3.2 आवश्यकता पूर्ति (Want Satisfaction):-

प्रायः यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति, वस्तु तथा घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती है एवं आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति अनुकूल होती है। तथा जिस व्यक्ति, वस्तु एवं घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे हमारी आवश्यकता की पूर्ति न होने के कारण उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल हो जाती है।

इस तथ्य की पुष्टि रोजेनबर्ग (1956) के प्रयोगात्मक अध्ययन से होती है। इस प्रयोग में 120 छात्रों को चुना गया, निष्कर्ष में पाया गया कि जो वस्तुएं छात्रों के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक थी उनके प्रति उनकी अनुकूल मनोवृत्ति बन गयी तथा जो वस्तुएं लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं थी, उनके प्रति उन छात्रों की मनोवृत्ति प्रतिकूल बन गयी। इस अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है कि आवश्यकता पूर्ति एक महत्वपूर्ण कारक है जो व्यक्ति की मनोवृत्ति के निर्माण और विकास में सहायक है।

5.3.3 दी गयी सूचनाएं (Given Information):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में दी गयी सूचनाओं का भी बहुत महत्व होता है। आजकल भिन्न-भिन्न माध्यमों से व्यक्ति को सूचनाएं दी जाती है। इन माध्यमों में रेडियो, टेलीविजन, पत्रिकाएं तथा अखबार मुख्य है। इन माध्यमों द्वारा दी गयी सूचनाओं के अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है। वास्तव में सूचनाओं की प्रभावशीलता कई बातों पर निर्भर करती है जिसमें सूचना की विश्वसनीयता मुख्य है। मेयर्स (1988) के

अनुसार यदि सूचना देने वाले स्त्रोत में व्यक्ति को पूरा विश्वास होता है तो उस परिस्थिति में दी गयी सूचना अवश्य प्रभावकारी होती है तथा एक नयी मनोवृत्ति को विकसित करती है। फेस्टिंगर (1957), कार्टराईट तथा हारेरी (1956) द्वारा किये गये अध्ययनों से इस बात की पुष्टि होती है।

5.3.4 समूह बंधन (Group Affiliation):-

मनुष्य की मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में समूह बंधन का भी प्रभाव पड़ता है। समूह बंधन का अर्थ है व्यक्ति का किसी खास समूह से सम्बन्ध रखना। जब व्यक्ति किसी विशेष समूह में संबंध जोड़ता है तो वह उस समूह के मूल्यों, मानदण्डों, विश्वासों को देखता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने निम्न दो प्रकार के समूह से सम्बन्ध का मनोवृत्ति विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है।

1- प्राथमिक समूह (Primary Group):- प्राथमिक समूह में सदस्यों की संख्या साधारणतः कम होती है तथा सदस्यों में घनिष्ठ एवं आमने-सामने का सम्बन्ध (face-to-face relationship) होता है। जैसे - परिवार, खिलाड़ियों का समूह आदि। चूंकि प्राथमिक समूह के सदस्यों में अधिक सहयोग, भाईचारा एवं सहानुभूति का गुण पाया जाता है। अतः इसका एक सदस्य ठीक वैसी ही मनोवृत्ति विकसित करता है, जैसी अन्य सदस्यों की होती है। भाई की मनोवृत्ति का विकास बहन की मनोवृत्ति के अनुकूल, भाई-बहन की मनोवृत्ति का विकास माता-पिता की मनोवृत्ति के अनुसार प्राथमिक समूह के इसी प्रभाव के कारण होता है। उदाहरणार्थ, जिन व्यक्तियों या घटनाओं के प्रति माता-पिता की मनोवृत्ति अनुकूल होती है, बच्चों में भी उन घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। दूसरी ओर जिन चीजों के प्रति माता-पिता की मनोवृत्ति होती है। बच्चे भी उन चीजों के प्रति एक प्रतिकूल मनोवृत्ति एक प्रतिकूल (unfavourable attitude) विकसित कर लेते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता (hormogeneity) पायी जाती है। कैम्पवेल, गुरीन तथा मिलर (1954) ने तीन प्रकार के प्राथमिक समूहों की राजनीतिक मनोवृत्ति के निर्माण में उच्च एकरूपता देखी है। क्रेच क्रचफील्ड तथा बैलेची (1962) के अनुसार प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण मनोवृत्ति में जो एकरूपता आती है, उसके निम्न चार कारण बतलाये हैं:-

1- प्राथमिक समूह के सदस्यों पर अनुपालन (conformity) के लिए अधिक सामूहिक दबाब मिलता है। इसके कारण ऐसे सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है।

2- प्राथमिक समूह द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है जिससे किसी सदस्य की मनोवृत्ति अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति के अनुकूल होती है। इससे भी सभी सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है।

3- किसी भी प्राथमिक समूह के सदस्यों को एक समान सूचनाएं दी जाती है। फलतः उनकी मनोवृत्तियों में एकरूपता आ जाती है।

2- संदर्भ समूह (Reference Group) :- मनोवृत्ति के निर्माण व विकास में सदर्भ समूह (तममितमदबम हतवनच) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। संदर्भ समूह का अर्थ है व्यक्ति ऐसे समूह के साथ आत्मीकरण

(identification) कर लेता है चाहे वह उस समूह का सदस्य औपचारिक रूप से हो या न हो। व्यक्ति संदर्भ समूह के लक्ष्य, मूल्य आदि को अपनाकर अपने चरित्र और व्यवहार में ठीक वैसा ही परिवर्तन करता है जैसा कि इन लक्ष्यों तथा मूल्यों से अपेक्षा की जाती है। स्पष्ट है कि संदर्भ समूह का प्रभाव मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में काफी अधिक है। रॉसी एवं रॉसी (1961) ने अपने अध्ययन में मनोवृत्ति निर्माण में धार्मिक संदर्भ समूह (religious reference group) के महत्व को दिखलाया है। मेयर्स (1988) के अनुसार संदर्भ समूह व्यक्ति के मनोवृत्ति के निर्माण में इसलिए सहायता प्रदान करता है क्योंकि संदर्भ समूह का मानक उसे वैसा करने के लिए बाध्य करता है।

5.3.5 रुढियुक्तियां (Stereotypes):-

प्रत्येक समाज में कुछ रुढियुक्तियांदेखने को मिलती हैं जिनसे भी व्यक्ति की मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। रूढ़िकृतियों से तात्पर्य किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशाओं तथा सामान्यीकरण से होता है। जैसे - हमारे समाज में महिलाओं के प्रति एक रूढ़िकृति है कि वह पुरूषों की अपेक्षा अधिक धार्मिक एवं परामर्शग्राही होती है। फलस्वरूप महिलाओं के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति सामान्य लोगों में पायी जाती है। इसी तरह के कई ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि रूढ़िकृतियों द्वारा व्यक्ति की मनोवृत्ति का विकस तथा निर्माण होता है।

5.3.6 व्यक्तित्व कारक (Personality factors):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में व्यक्तित्व शीलगुणों का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति उन मनोवृत्तियों को शीघ्रता से सीख लेता है जो उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों (personality traits) के अनुकूल होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह की मनोवृत्तियों जैसे - धार्मिक मनोवृत्ति, राजनैतिक मनोवृत्ति तथा सजातिकेन्द्रवाद में व्यक्तित्व कारकों का अध्ययन किया है। फ्रेंच (1947) ने अपने अध्ययन में धार्मिक मनोवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व कारकों के महत्व को दिखलाया है। मैकक्लास्की ने राजनैतिक मनोवृत्ति में व्यक्तित्व कारकों के महत्व को दिखलाया है। उन्होनें अपने अध्ययन में पाया कि कम पढ़े लिखे तथा मन्दबुद्धि लोगों में अनुदार मनोवृत्ति अधिक पायी जाती है। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह भी बताया है कि अत्याधिक अनुदार मनोवृत्ति वाले व्यक्ति अधिक झगड़ालू, शक्की, अपनी कमजोरी के लिए दूसरों पर आरोप लगाने वाले वैरपूर्ण आक्रामक होते हैं। ऐसे लोग अधिक चिन्तित, दोषमात्र तथा अपूर्णताभाव से भी ग्रस्त होते हैं।

5.3.7 सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors):-

मनोवृत्ति के निर्माण तथा विकास में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक संस्कृति का अपना मानदण्ड, मूल्य, परम्पराएं, धर्म आदि होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण किसी न किसी संस्कृति में ही होता है। फलस्वरूप उसका समाजीकरण इन्हीं सांस्कृतिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों को इन्ही सांस्कृतिक कारकों के अनुसार विकसित करता है। मीड (1935) ने अपने अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष

निकाला है कि सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण ऐरापेश जाति के लोगों की मनोवृत्ति में उदारता, सहयोग की भावना तथा दयालुता आदि अधिक होती है जबकि मुण्डुगुमोर जाति के लोगों की मनोवृत्ति में ठीक इसके विपरीत अर्थात आक्रामकता तथ कटुता अधिक पायी जाती है। ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, साहित्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि का समग्र रूप ही संस्कृति कहलाता है। मनोवृत्तियों का विकास व्यक्ति का सीखा हुआ व्यवहार होता है। यही व्यवहार संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। क्रोबर (1948) नाडल (1973) कुक (1952) एवं होगेन (1952) ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध किया है मनोवृत्तियों के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

5.3.8 सामाजिक सीखना और सामाजिक संस्थाएं (Social Learning and Social Institutions):-

परिवार, स्कूल, मंदिर, मस्जिद, चर्च आदि समाज की कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो व्यक्ति को सामाजिक शिक्षण देती हैं। यह सामाजिक शिक्षण भी मनोवृत्ति के निर्माण और विकास में सहायक हैं। मर्फी और न्यूकाम्ब आदि ने अपने अध्ययनों के आधार पर मनोवृत्तियों के निर्माण व विकास में सामाजिक सीखने के महत्व पर प्रकाश डाला है।

5.4 सूचना एवं प्रसार

व्यक्ति को जिस उत्तेजना के सम्बन्ध में जितनी अधिक सूचनाएं मिलती हैं या जिसका प्रचार व्यक्ति अधिक देखता है उस उत्तेजना से सम्बन्धित उसमें मनोवृत्तियों का विकास जल्दी हो जाता है। स्मिथ का कथन है कि मात्र किताब में पढ़कर उसके आधार पर किसी के सम्बन्ध में धनात्मक या ऋणात्मक मनोवृत्ति का विकास हो सकता है।

5.4.1 प्रत्यक्षात्मक कारक (Perceputal Factors):-

व्यक्ति जैसी उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षण करता है उसी प्रकार से उस व्यक्ति की मनोवृत्तियों का निर्माण व विकास होता है।

5.4.2 प्रेरणात्मक कारक (Motivational Factors):-

क्रेच तथा क्रचफील्ड (1962) का मत है कि मनोवृत्तियों के निर्धारण में प्रेरणा तत्व महत्वपूर्ण है। जैविक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की प्रेरणाएं मनोवृत्तियों के विकास में सहायक हैं। मनोवृत्तियों का विकास और निर्माण व्यक्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि पर भी निर्भर करता है। स्मिथ, ब्रूनर तथ व्हाइट (1956) द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताएं, रूचियां तथा आकांक्षाएं भी मनोवृत्तियों को सार्थक ढंग से प्रभावित करती हैं।

5.5 मनोवृत्तियों का मापन

समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति को मापने के लिए विभिन्न विधियों का प्रतिपादन किया है। मनोवृत्ति मापन से तात्पर्य व्यक्ति में मनोवृत्ति की दिशा और उसकी मात्रा का पता लगाने से होता है। मनोवृत्ति की दिशा से ज्ञात होता है कि मनोवृत्ति धनात्मक है या ऋणात्मक है तथा उसकी मात्रा से तात्पर्य इस बात से होता है कि मनोवृत्ति धनात्मक है तो कितनी मात्रा में या ऋणात्मक है तो कितनी मात्रा में है।

मनोवृत्ति मापन में समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा दो मुख्य पूर्वकल्पनाएं की जाती है जो निम्नलिखित है।

1. मनोवृत्ति के मापन में यह पूर्वकल्पना कर ली जाती है कि व्यक्ति का व्यवहार मनोवृत्ति की घटना या वस्तु के प्रति एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में संगत होगा। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति सहशिक्षा को नापसंद करता है तो हर परिस्थिति में नापसंद ही करेगा। इस प्रकार की संगति नहीं रहने पर मनोवृत्ति को मापना संभव नही है।
2. मनोवृत्ति को सीधे मापना संभव नही है। फलतः इसका मापन अधिकतर परोक्ष रूप से होता है। इसलिए इस बात की पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति के व्यवहारों एवं कथनों द्वारा ही उसकी मनोवृत्ति के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है।

आज मनोवृत्ति मापन की अनेक मापनी प्रचलित हैं। मनोवृत्तियों का मापन प्रश्नावलियों या सेल्फ रेटिंग से प्राप्त उत्तरों के विश्लेषण द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त मनोवृत्ति का मापन स्मृति और प्रत्यक्षात्मक प्रक्रियाओं पर प्रभाव के रूप में भी किया जाता है।

मनोवृत्ति मापने के लिए समाज मनोवैज्ञानिको द्वारा कई मनोवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। ये मापनियां निम्नलिखित हैं:-

5.5.1 थर्स्टन मापनी विधि (Thurstone’s Scaling Method)

5.5.2 लिकर्ट मापनी विधि (Likert’s Scaling Method)

5.5.3 अर्थ भेदक मापनी विधि (Semantic Differential Scale Method)

5.5.4बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी (Bogardus Scale of Social Distance)

5.5.1थर्सटन की सम-विस्तार पद्धति (Thurstone’s Technique of Equal Appearing Intervals):-

इस प्रकार की मनोवृत्ति मापनी के निर्माण में सर्वप्रथम जिस प्रकार की मनोवृत्ति का मापन करना हो उसी मनोवृत्ति सम्बन्धित कथनों को कई स्त्रोतो जैसे पुस्तकें, शोध पत्रिका, लेखकों की रचनाओं आदि की सहायता से एकत्र किया जाता है फिर कथनों को सरल, संक्षिप्त, सार्थक एवं स्पष्ट बनाकर विशेष ढंग से व्यवस्थित किया जाता है। कथनों की संख्या लगभग 40 या 50 होती है। इस पद्धति में निर्णायकों से कथनों का उत्तर प्राप्त करने की 11श्रेणियां होती हैं।

यह 11 श्रेणियां समविस्तार की सांतव्य के आधार पर ही मनोवृत्ति मापनी में निम्न प्रकार से अंकित की जाती हैं:-

A B C D E F G H I J K

अति प्रतिकूल उदासीन अति अनुकूल

मनोवृत्ति मापनी में प्रत्येक कथन को अंतिम रूप से चुनने के लिए प्रत्येक कथन का मापनी मूल्य तथा साथ ही साथ प्रत्येक कथन का चतुर्थांश मूल्य ज्ञात करते हैं। अंतिम रूप से चुने गये प्रश्नों की संख्या 20 होती है। मापनी का प्रशासन तथा फलांकन सरल है। प्रयोज्य कथन से सहमत होने पर (□✓) तथा असहमत होने पर (×) का चिन्ह लगाता है। फलांकन में सही चिन्ह वाले कथनों को उनके मापनी मूल्यों के आधार पर कम से अधिक के क्रम में लिखकर मध्यांक ज्ञात करते हैं। मध्यांक मूल्य ही प्रयोज्य का मनोवृत्ति मूल्य है।

- थसर्टन की मापनी विधि के गुण व दोष:-

गुण:- इस विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं -

1. इस विधि में कथनों की छंटनी ग्यारह बिन्दु में रखकर की जाती है। फलस्वरूप, इससे बनने वाली मापनी में मनोवृत्ति मापने की क्षमता अधिक तीव्र होती है।
2. इस विधि में सरलता व सुगमता का गुण पाया जाता है। दूसरे दूसरों में, इस विधि द्वारा तैयार की गयी मनोवृत्ति मापनी से व्यक्तियों की मनोवृत्ति को मापने में कोई कठिनाई नहीं होती और सुगमता से हमें एक ऐसा सूचक भी प्राप्त हो जाता है जिसकी सहायता से हम यह समझ पाते हैं कि व्यक्ति की मनोवृत्ति अध्ययन की जाने वाली वस्तु या विषय के अनुकूल है या प्रतिकूल है।

थर्सटन मापनी विधि में मौजूद इन गुणों के बावजूद इस विधि में कुछ अवगुण (दोष) हैं जो निम्न हैं:-

1. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि थर्सटन विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बनाने में काफी समय खर्च होता है साथ ही साथ अधिक धन की भी आवश्यकता पड़ती है। थर्सटन ने स्वंय इस बात पर बल दिया है कि एक वैध (अंसपक) मनोवृत्ति मापनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि निर्णायकों की संख्या ज्यादा से ज्यादा हो। संभवतः ऐसी परिस्थिति में समय व धन दोनों ही अधिक खर्च होगा।

2. फ्रैन्सवर्थ (1943) ने बताया है कि थर्सटन की यह पूर्वकल्पना की निर्णायकों द्वारा सभी ग्यारह श्रेणियों को मनोवैज्ञानिक रूप से समान माना जाता है, सही नहीं है। वास्तविकता यह है कि निर्णायक इन सभी श्रेणियों को समान समझकर कथनों को नहीं छांटते हैं।

5.5.2 लिकर्ट की तीव्रता योग मापक पद्धति (Likert's Technique of Summated Ratings):-

लिकर्ट (1932) द्वारा निर्मित मनोवृत्ति मापनी में किसी विषय के प्रति अनुकूल तथा प्रतिकूल मनोवृत्तियों का मापन किया जाता है। इस मापनी को बनाते समय सर्वप्रथम अधिक संख्या में धनात्मक तथा ऋणात्मक कथनों को एकत्र किया जाता है। प्रत्येक कथन के सामने पांच बिन्दु मापनी लगाया जाता है जिसकी सहायता से मनोवृत्तियों को 5 भिन्न-भिन्न मात्राओं मे मापा जाता है।

1 2 3 4 5

अत्याधिक सहमत सहमत अनिश्चित सहमत तीव्र असहमत

कथनों को एकत्र करने के बाद उसके चयन के लिए पद विश्लेषण विधि अपनाते हैं। कथनों के पद विश्लेषण के लिए टी-मान ज्ञात करते हैं। किसी कथन का टी-मान 1.75 या इससे अधिक प्राप्त होने पर कथन को परीक्षण में शामिल किया जाता है। बहुधा सर्वप्रथम सर्वाधिक टी-मान वाले कथनों को चुनकर अंतिम रूप से उन कथनों की सूची ही लिकर्ट विधि द्वारा बनायी गयी मनोवृत्ति मापनी है।

- लिकर्ट मापनी विधि के गुण तथा दोष-

गुण:-

1. लिकर्ट विधि में निर्णायकों का प्रयोग न करके प्रयोज्यों का प्रयोग किया जाता है। अतः कथनों का अंतिम चयन निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति के प्रभाव से मुक्त होता है।
2. लिकर्ट विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बनाने में समय व धन कम लगता है। अतः लिकर्ट विधि में व्यवहारिकता का गुण पाया जाता है।
3. लिकर्ट विधि में लचीलेपन का गुण भी पाया जाता है तथा इससे प्राप्त आंकड़ों द्वारा विभिन्न तरह के क्रमसूचक सांख्यिकीय विश्लेषण को भी आसानी से किया जा सकता है।

दोष:-

1. लिकर्ट विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस विधि में अधिकतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक का अर्थ तो स्पष्ट है क्योंकि पहले द्वारा अनुकूल मनोवृत्ति तथा दूसरे द्वारा प्रतिकूल मनोवृत्ति का पता चलता है। परंतु जो अंक अधिकतम प्राप्तांक तथा न्यूनतम प्राप्तांक के बीच में आते हैं, द्वारा क्या ज्ञात होता है, कि व्याख्या नहीं की गयी है।

2. लिकर्ट विधि द्वारा बनाई गई मनोवृत्ति मापनी से मनोवृत्ति की दिशा का तो पता चलता है परंतु मात्रा का नहीं। दूसरे दूसरों में यह तो ज्ञात होता है कि मनोवृत्ति अनुकूल है या प्रतिकूल परन्तु यह पता नहीं चलता कि अनुकूलता तथा प्रतिकूलता की मात्रा कितनी है।

5.5.3 अर्थ भेदक प्रविधि (The Semantic Differential Tehcnique) :-

इस प्रविधि का विकास आसगुड, सुसी, टनेनबॉम (1957) द्वारा किया गया था। इस प्रविधि में दो छोर वाले विशेषण मापनियों की सहायता से मनोवृत्ति का मापन करते हैं। इस प्रविधि की सहायता से सुंदर-असुंदर, मोटा-पतला, तीव्र-मंद जैसे विशेषणों का उपयोग किया जाता है। इसका प्रथम छोर दूसरों का अत्याधिक नकारात्मक तथा अंतिम छोर अत्याधिक सकारात्मक अर्थ प्रस्तुत करता है। इन दो छोर वाले विशेषणों पर प्रयोज्य की प्रतिक्रियां नोट की जाती है। प्रतिक्रिया नोट करने के लिए सात बिन्दु मापनी का उपयोग किया जाता है। प्रयोज्य का सम्पूर्ण प्राप्तांक उसके द्वारा 7 बिंदुओं पर लगाये गये निशान के मूल्यांकन के आधार पर प्राप्त किये गये अंको को जोड़कर प्राप्त किया जाता है। अर्थभेदक मापनी में वस्तु के गुणार्थक अर्थ को मापने के लिए द्विध्रुवीय विशेषण की एक श्रृंखला तैयार की जाती है जो प्रायः 7 बिंदु मापनी द्वारा पृथक रहती है। इन विशेषणों द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति मनोवृत्ति की 3 मूल विमाओं के बारे में बताया गया है:-

1- शक्ति (**Potency or P**):- मनोवृत्ति वस्तु में कितनी शक्ति या भौतिक आकर्षण है।

2- मूल्यांकन (**Evaluation or E**):- मनोवृत्ति वस्तु में कितनी अनुकूलता या प्रतिकूलता है।

3- क्रिया (**Activity or A**):- मनोवृत्ति वस्तु में गति होने की कितनी मात्रा है।

शक्ति को कुछ खास विशेषण युग्म जैसे मजबूत-कमजोर, बड़ा-छोटा, कड़ा-मुलायम आदि द्वारा अर्थभेदक मापनी में लिखा जाता है। मूल्यांकन को कुछ विशेषण युग्म जैसे अच्छा बुरा, साफ गंदा, ईमानदार, बेईमान आदि द्वारा मापनी में दिखाया जाता है। इसी प्रकार क्रिया को कुछ विशेषण युग्म सक्रिय निष्क्रिय, तेज-धीमा, गर्म-ठण्डा, द्वारा दिखाया जाता है। इन तीनों तरह के विशेषण युग्मों को मिलाकर करीब 40-50 युग्म तैयार किये जाते हैं।

- अर्थभेदक मापनी विधि के गुण तथा दोष -

गुण:-

1. किसी दो या दो से अधिक वस्तुओं के प्रति एक ही व्यक्ति की मनोवृत्ति की तुलना करने में यह विधि सबसे सरल तथा उपयोगी है।
2. इस विधि द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के मापन में कम समय लगता है।

दोष:-

1. इस मापनी विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि विशेषणों का जो युग्म तैयार किया जाता है वह पूर्ण रूप से उपयुक्त नहीं होता। फलतः उसके आधार पर मापी गयी मनोवृत्ति की वैधता संदिग्ध हो जाती है।

2. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस मापनी पर प्रयोज्यों द्वारा दी गयी अनुक्रियाएं मात्र सतही होती है। उदाहरणार्थ ऐसा हो सकता है कि एक व्यक्ति पुलिस को बेईमान मानता हो पर मापनी पर उसे उतना बेईमान न बता रहा हो।

5.5.4बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी (Bogardus Scale of Social Distance):-

मनोवृत्ति के मापन के लिए सन् 1925 में सामाजिक अंतर या सामाजिक दूरी मापनी का निर्माण बोगार्डस द्वारा किया गया था। इनका मत था कि विभिन्न धर्म, जाति तथा राष्ट्रीयता के लोगों के प्रति हमारी घनिष्ठता में भिन्नता पायी जाती है। जिन लोगों से हम घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं उनके प्रति हमारी दूरी कम होती है तथा जिनसे हमारी घनिष्ठता कम होती है उनसे दूरी अधिक होती है। इसी कारण हम अन्य समूह के लोगों के प्रति विभिन्न मात्रा में अंतःसम्बन्ध या अंतःक्रिया करते हैं। अन्य समूहों के लोगों के प्रति घनिष्ठता तथा दूरी की इस भिन्न-भिन्न मात्रा के आधार पर ही हम उनके साथ व्यवहार करते हैं। इसीलिए घनिष्ठता या दूरी व्यवहार को पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। अतः इस सामाजिक दूरी के आधार पर हम मनोवृत्तियों का मापन कर सकते हैं।

बोगार्डस ने विभिन्न देशों के नागरिकों के प्रति सामाजिक दूरी मापने के लिए इस विधि का प्रयोग किया था। तब से आज तक अनगिनत शोध कार्यों में इस प्रकार की मापनी का प्रयोग लगातार हमारे देश तथा विदेशो में हो रहा है। भारत में इस दिशा में कार्य की शुरूआत कुप्पूस्वामी (1952) द्वारा की गयी।

मापनी निर्माण की विधि:-

बोगार्डस की इस विधि द्वारा मनोवृत्ति मापन के लिए सामाजिक दूरी मापनी का निर्माण करने के लिए निम्न चरणों से गुजरना पड़ता है -

1. इस विधि से मनोवृत्ति मापनी का निर्माण करने के लिए सर्वप्रथम कुछ ऐसे कथन चुन लिये जाते हैं जो घनिष्ठता तथा दूरी की विभिन्न मात्राएं व्यक्त करते हैं। इन कथनों को क्रमबद्ध रूप से लिखकर छपवा लेते हैं। कथनों का क्रम इस प्रकार होता है कि सबसे कम दूरी व्यक्त करने वाला कथन सबसे पहले, अंत में सबसे अधिक दूरी व्यक्त करने वाला तथा अन्य कथन उनके द्वारा व्यक्त की गयी दूरी के आधार पर बीच में क्रम से होते हैं। इन कथनों को बोगार्डस ने श्रेणियां कहा है।
2. कथनों को छपवाने के बाद उन प्रयोज्यों को दे दिया जाता है जिनकी सामाजिक दूरी का मापन करना होता है। उन्हें यह निर्देश दिया जाता है कि ''आप अपनी प्रथम भाव प्रतिक्रिया के अनुसार दिये गये देश या जाति के सदस्यों के साथ स्वेच्छानुसार कितनी दूरी या निकटता रखना चाहेंगे उसी के अनुसार एक या अधिक श्रेणियों पर सही (✓) का चिन्ह लगा दें।

3. प्रयोज्यों द्वारा प्रत्येक (□✓) चिन्हित किये गए कथन को एक अंक प्रदान किया जाता है। इन अंको के योग के आधार पर विभिन्न देशों या जाति के लोगों के प्रति प्रयोज्य की सामाजिक दूरी या निकटता की गणना की जाति है।
4. जिस व्यक्ति के प्राप्तांको का योग जितना अधिक होता है उसकी सामाजिक दूरी दिये गये देश या जाति के प्रति उतनी कम होती है। कम प्राप्तांक अधिक सामाजिक दूरी के द्योतक होते हैं।

बोगार्डस ने विभिन्न राष्ट्र के नागरिकों के प्रति अमेरिकन लोगों की सामाजिक दूरी मापने के लिए निम्नलिखित सात श्रेणियों (कथनों) का उपयोग किया था।

1- विवाह के द्वारा घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर।

2- अपने क्लब में व्यक्तिगत मित्र बनाकर।

3- अपने मुहल्ले में पड़ोसी के रूप में।

4- अपने व्यवसाय में नौकरी दिलाने के रूप में।

5- अपने देश में नागरिक के रूप में।

6- अपने देश में पर्यटक के रूप में।

7- अपने देश से निकालकर।

- बोगार्डस सामाजिक दूरी मापनी विधि के गुण व दोष-

गुण:-

1. बोगार्डस की सामाजिक दूरी मापनी विभिन्न धर्मो, जातियों, देशों आदि के सदस्यों के प्रति मनोवृत्तियों का मापन करने की सबसे आसान विधि है।

परंतु इसमें कुछ दोष निम्नलिखित है -

1. बोर्गाडस की सामाजिक दूरी मापनी में सम्मिलित श्रेणियों (कथनों) की दूरी समान नहीं होता जिस कारण वास्तविक स्थिति का पता लगाना कठिन हो जाता है।
2. इस मापनी का दूसरा बड़ा दोष यह है कि इसमें कथनों का एकत्रीकरण अध्ययनकर्ता की स्वेच्छा से होता है। इनको एकत्र करने की न कोई कसौटी है और न ही कोई सांख्यिकीय पद्वति। इससे मापनी में वस्तुनिष्ठता न होकर वैयक्तिकता आ जाती है।

5.6सारांश

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनोवृत्ति का विकास एवं मापन समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण विषय रहा है इनके द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक है जिनसे

मनोवृत्ति का निर्माण तथा विकास प्रभावित होता है। इसी प्रकार मनोवृत्ति के मापन के लिए अनेक विधियों का प्रतिपादन समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है।

5.7 शब्दावली

- **संस्कृति:**पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त रीति-रिवाजों, व्यवहार प्रतिमानो, मूल्यों को प्राप्त करना तथा उनके अनुरूप व्यवहार करना संस्कृति कहते हैं।
- **व्यक्तित्व शीलगुण:**व्यक्तित्व की विशेषताओं के योग को शीलगुण कहा जाता है।
- **समूह प्रभाव:**व्यक्तियों की उपस्थिति का मानसिक विचारों पर पड़ने वाले प्रभाव को समूह प्रभाव कहते हैं।
- **सामाजिक सीखना:**सामाजिक रीति-रिवाजो, प्रतिमानों मूल्यों को सीखना ही सामाजिक सीखना कहा जाता है।
- **प्रत्यक्षण:**अपने चारों ओर के वातावरण के बारे में अर्थपूर्ण तत्कालिक ज्ञान को प्रत्यक्षण कहते हैं।

5.8स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- मनोवृत्ति विकास में निम्न में से किसका प्रभाव सबसे अधिक पाया जाता है।

(i)स्त्रोत की उपयुक्तता से।

(ii)स्त्रोत का व्यक्ति के साथ सम्बन्धता से।

(iii) स्त्रोत की आकर्षणशीलता से।

(iv) स्त्रोत जिससे व्यक्ति को सूचना मिलती है, की विश्वसनीयता से।

उत्तर: (1) (iv)

5.9संदर्भ ग्रन्थ सूची

Bogardus, E.S. (1952) : Measuring Social Distance, p.p. 299-308, of Appl. Social Psychol., 9

Pace, C.R. (1939) : A Situation Test To Measure Social, Political of Social Psychol., 10.

Thurstone, L.L. (1929) : The Theory of Attitude Measurement, pp. 222-241, Psychol. Bull., 36

डा0 आर.एन.सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा

Mishra Girishwar (2007) : Applied Social Psychology In India, Sage, Publication New Delhi.

5.10निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवृत्ति के विकास में सहायक मुख्य कारक कौन-कौन से हैं ?
2. मनोवृत्तियों के मापन की किन्ही दो विधियों का वर्णन कीजिए ?
3. थर्सटन तथा लिकर्ट मापनियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ?

इकाई-6 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त और कारक(Theories and Factors of Attitude Change)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रकार
6.3.1 अनुकूल परिवर्तन
6.3.2 प्रतिकूल परिवर्तन
6.4 मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक
6.5 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त
6.5.1 संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त
6.5.2 सामाजिक सीखना सिद्धान्त
6.5.3 कार्यात्मक सिद्धान्त
6.5.4 विविध सिद्धान्त
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मनोवृत्तियां बहुत कुछ स्थायी होती हैं परन्तु इनका अर्थ यह नहीं कि मनोवृत्तियां परिवर्तित नहीं होती। समाज में रहकर व्यक्ति मनोवृत्तियों को सीखता है या अर्जित करता है। अतः इनका परिवर्तन भी सम्भव है। समय-समय पर मनोवृत्ति के निर्माण एवं संपोषित करने वाले कारकों में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती रहती है। यदि वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल है तो सम्भव है कि कुछ दिनो बाद यह मनोवृत्ति बदलकर अनुकूल हो जाये लेकिन ऐसा नहीं भी हो सकता है। परंतु इतना तो निश्चित है कि परिस्थिति में परिवर्तन होने से व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:-

- मनोवृत्तियों में परिवर्तन के बारे में पढ़ सकेंगे।
- मनोवृत्तियों में परिवर्तन के सिद्धान्तो के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने वाले अन्य महत्वपूर्ण कारकों के बारे में जान सकेंगे।

6.3 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रकार

मनोवृत्तियों में परिवर्तन दो प्रकार से हो सकता है:-

6.3.1 अनुकूल परिवर्तन (Congruent Change):-

जब किसी मनोवृत्ति में परिवर्तन मनोवृत्ति की कर्षण शक्ति के अनुकूल होता है तो ऐसा परिवर्तन अनुकूल परिवर्तन कहलाता है। जैसे यदि मनोवृत्ति धनात्मक है तो और अधिक धनात्मक हो जाये या यदि ऋणात्मक है तो और अधिक ऋणात्मक हो जाये।

6.3.2 प्रतिकूल परिवर्तन (Incongruent Change):-

जब किसी मनोवृत्ति में परिवर्तन मनोवृत्ति की कर्षण शक्ति के विपरीत होता है तो ऐसे परिवर्तन को प्रतिकूल परिवर्तन कहते हैं। जैसे यदि मनोवृत्ति धनात्मक है तो उसकी धनात्मकता इतनी कम होती जाये कि मनोवृत्ति ऋणात्मक हो जाये। इसी प्रकार यदि मनोवृत्ति ऋणात्मक है तो उसकी ऋणात्मकता इतनी कम होती जाये कि मनोवृत्ति धनात्मक हो जाये।

6.4 मनोवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

मनोवृत्ति परिवर्तन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं:-

1) **जनमाध्यम एवं सम्प्रेषण (Mass Media and Communcation):-**पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, समाचार पत्र, टेलीविजन आदि प्रचलित जनमाध्यम और सम्प्रेषण के साधन हैं। इन साधनों द्वारा देश के अधिकांश व्यक्तियों तक सूचना पहुंचाई जा सकती है। इन साधनों का बार-बार प्रयोग कर उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। पीटरसन एवं थर्सटन (1937), होवलैण्ड एवं वीस (1952) तथा जेनिस एवं फेसबैक (1953) ने अपने अध्ययनों में पाया कि मनोवृत्ति परिवर्तन पर सम्प्रेषण का प्रभाव पड़ता है।
2) **सम्पर्क (Contact):-** जब व्यक्ति परस्पर सम्पर्क में आते हैं और उन्हें साथ-साथ उठने-बैठने खाने-पीने और रहने का अवसर मिलता है। तो ऐसे सम्पर्क से भी मनोवृत्तियां परिवर्तित हो जाती हैं। गटमैन एवं फोवा (1951) में अपने अध्ययन द्वारा स्पष्ट किया कि सम्पर्क के कारण मनोवृत्तियों का परिवर्तन होता है।

3) **स्कूल का प्रभाव (Effect of School Experience):-**बालक जिस विद्यालय में पढ़ता है वहां का वातावरण, स्कूल के साथी, अध्यापक यह सभी उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन सभी लोगों का व्यवहार, व्यक्तित्व और मनोवृत्तियां एक बच्चे की मनोवृत्ति को बदल सकती है और नई मनोवृत्ति का निर्माण भी। न्यूकाम्ब (1943) ने अपने अध्ययन में भी यही पाया।
4) **प्रतिष्ठा निर्देश (Prestige Suggestion):-**जब कोई व्यक्ति किसी बड़े नेता, समाज सुधारक महात्मा या विद्वान का भाषण सुनता है तो भाषण द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा निर्देशों के कारण भी मनोवृत्तियां परिवर्तित हो जाती हैं। लेविस (1941) ने अपने अध्ययनों द्वारा यही निष्कर्ष निकाला।
5) **व्यक्तिगत स्पष्ट अनुभव (Personal Vivid Experience):-**प्रायः देखा गया है कि लोग आंखो देखी बात पर अधिक विश्वास करते हैं। किसी भी वस्तु, घटना या व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में व्यक्तिगत और स्पष्ट अनुभव मनोवृत्तियों के परिवर्तन में अधिक सहायक होते हैं। स्मिथ (1943) तथा हारलन (1947) के अध्ययन द्वारा भी इसी बात की पुष्टि होती है।
6) **संदर्भ समूह में परिवर्तन (Changing in Reference Group):-**समाज मनोवैज्ञानिक द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के संदर्भ समूह में परिवर्तन होने पर व्यक्ति की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन आ जाता है। न्यूकाम्ब (1950) ने बेनिंगटन महाविद्यालय की छात्राओं पर अध्ययन कर उनकी मनोवृत्ति का मापन किया गया और पाया कि उनकी मनोवृत्ति में अनुदारता अधिक थी। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि वे सभी धनी परिवारों से सम्बन्ध रखती थी और उनके माता-पिता भी अनुदार थे। कॉलेज का वातावरण भी ऐसा था कि इससे उदार मनोवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन मिलता था। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा इसलिए संभव हो सकता क्योंकि छात्राओं का संदर्भ समूह अब बदलकर कालेज हो गया था। जहां उदार मनोवृत्ति की प्रधानता थी।
7) **अपेक्षित भूमिका निर्वाह (Required Role Playing):-** कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति को ऐसा व्यवहार दूसरे लोगों के सामने करना पड़ता है जिसे वह करना नहीं चाहता क्योंकि ऐसा व्यवहार उसकी निजी मनोवृत्ति के विपरीत होता है। ऐसा देखा गया है कि इस तरह की भूमिका करते'-करते व्यक्ति की निजी मनोवृत्ति परिवर्तित होकर किये गये व्यवहार के अनुकूल हो जाती है। अर्थात वह आम मनोवृत्ति के समान हो जाती है। कल्बर्टसन (1957) ने अपने प्रयोगशाला प्रयोग में पाया है कि भूमिका निर्वाह के कारण निग्रो के प्रति प्रयोज्यो की सामान्य मनोवृत्ति तथा निग्रो गोरे आवासीय संगठन के प्रति प्रयोज्यों की विशिष्ट मनोवृत्ति में क्रमशः 76.1% तथा 76.7% धनात्मक परिवर्तन हुआ। इतना ही नही भूमिका निर्वाह का प्रभाव भूमिका करने वाले के अलावा भूमिका देखने वाले की मनोवृत्ति पर भी पड़ते पाया गया। इसके अलावा अन्य अध्ययनों द्वारा भी स्पष्ट है कि भूमिका निर्वाह की प्रक्रिया का मनोवृत्ति परिवर्तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

8) **समूह संबंध में परिवर्तन (Change in Group Affiliation):-** समूह सम्बन्ध में परिवर्तन का प्रभाव मनोवृत्ति परिवर्तन पर सीधा पड़ता है। यदि व्यक्ति पुराने या वर्तमान समूह सम्बन्ध को छोड़कर एक नये समूह से सम्बन्ध बना लेता है तो स्वभावतः वह अपनी मनोवृत्ति में नये समूह के नियमों के अनुसार परिवर्तन करता है।

जब भी समूह संबंधन में परिवर्तन होता है, व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन की प्रक्रिया दो बातों पर आधारित होती है - समूह की विशेषता (characterists of membership of the person in the group)। समूह की विशेषता का तात्पर्य समूह के मूल्यों विश्वास तथा मानदण्ड से होता है। यदि किसी व्यक्ति के लिए नया समूह जिससे वह सम्बन्ध जोड़ना चाहता है का मानदण्ड अधिक आकर्षक है, समूह का विश्वास स्वीकार करने योग्य है तथा समूह का मूल्य या मान अधिक महत्वपूर्ण है, ऐसी स्थिति में वह अपनी मनोवृत्ति में इस नये समूह के मानदण्डों, विश्वासों तथा मूल्यों के अनुसार शीघ्र परिवर्तन कर लेता है। समूह में व्यक्ति की सदस्यता से तात्पर्य नये समूह में व्यक्ति की सदस्यता की स्थिति और उसके महत्व से होता है। यदि नयी सदस्यता की स्थिति अच्छी है और उसका महत्व तुलनात्मक रूप से अधिक है तो व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में सदस्यता की मांग के अनुसार तुरंत परिवर्तन कर लेता है। होमान्स (1950) ने अपने अध्ययन में पाया कि यदि व्यक्ति की स्थिति नये समूह में ऊंची होती है साथ ही उसकी लोकप्रियता अधिक होती है तो वह अपनी मनोवृत्ति में नये समूह की सदस्यता के मांग के अनुसार शीघ्र ही परिवर्तन लाकर उसी के अनुरूप व्यवहार करना शुरू कर देता है।

9) **व्यक्तित्व परिवर्तन प्रविधियां (Personality Change Techniques)**:- कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाकर उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने की कोशिश की है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्तित्व संरचना में परिवर्तन लाने से व्यक्ति की मनोवृत्ति में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्थाई होता है। काज और उनके सहयोगियों (Katz. et. al. 1956) के अध्ययन के अनुसार निग्रो के प्रति मनोवृत्ति परिवर्तन के लिये तथ्यपूर्ण सूचना अपील तथा आत्मसूझ विधि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इससे पता चला कि निग्रो बच्चों के प्रति गोरे प्रयोज्यों की प्रतिकूल मनोवृत्ति में तथ्यपूर्ण सूचना अपील विधि द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु आत्मसूत्र विधि द्वारा विशेषकर वैसे गोरे व्यक्तियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ जिनमें आत्मरक्षात्मकता का शीलगुण कम था। एक्सलाईन (Axline, 1948) द्वारा किये गये अध्ययन से ज्ञात होता है कि सात वर्षीय कुछ ऐसे गोरे समस्यात्मक बच्चों को लिया गया जो प्रजातीय मनोवृत्तियों से काफी पीड़ित थे। अर्थात् ऐसे बच्चे निग्रो बच्चों के प्रति या तो काफी आक्रामक थे या काफी असामाजिक व्यवहार करते थे। गोरे बच्चों के व्यक्तित्व में खेल चिकित्सक द्वारा बदलाव लाया गया जिससे पता चला कि निग्रो बच्चों के प्रति उदारता व प्रेम बढ़ गया।

इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व परिवर्तन द्वारा भी व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

10) **बाधित सम्पर्क (Enforced Contact):-** मनोवृत्ति परिवर्तन में बाधित सम्पर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। बाधित सम्पर्क से तात्पर्य ऐसे सम्पर्क से होता है जिसमें व्यक्तियों को कुछ ऐसे व्यक्तियों के साथ लाचारी में अन्तःक्रिया करना पड़ता है जिनके साथ वह अन्तःक्रिया करना बिल्कुल पसन्द नही करता। उदाहरणार्थ एक दलित व एम सवर्ण को एक ही कमरे में रहने दिया जाए तो वह बाधित सम्पर्क का ज्वलन्त उदाहरण होगा। कई मनोवैज्ञानिको के अध्ययनों में देखा गया कि बाधित सम्पर्क में व्यक्तियों को एक दूसरे को समझने का मौका मिलता है जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे के लिये स्वंय ही उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन आ जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिकी सैनिक के शोध द्वारा किये अध्ययन से पता चला कि गोरे सैनिको तथा काले सैनिको को एक साथ एक हीदल रहकर शत्रु का सामना करना था। शोध सर्वे से ज्ञात हुआ अधिकतर गोरे सैनिकों के पदाधिकारियों ने पहले इस ढंग से दल बनाने के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति व्यक्त की लेकिन कुछ समय पश्चात् दूसरा सर्वे करने से देखा गया कि 75 सैनिक एवं अधिकारियों की मनोवृत्ति नाकरात्मक से बदलकर सकारात्मक हो गई थी। कुछ प्रयोगों में आवासीय योजना में बाधित सम्पर्क का मनोवृत्ति परिवर्तन पर प्रभाव देखा गया। इसमें 2 तरह की आवासीय योजनाएं शामिल की गई - पृथक आवासी योजना तथा संगठित आवासीय योजना। पृथक आवासीय योजना में गोरी गृहपत्नियां व श्याम गृह पत्नियां अलग-अलग मकानो में रहती थी जबकि संगठित आवासीय योजना में वे दोनों प्रकार की गृहपत्नियां एक ही मकान में एक साथ रहती थीं। कुछ दिनो बाद दोनों की मनोवृत्तियां मापी गई तो परिणाम में पाया कि संगठित आवासीय योजना में रहने वाली गोरी गृह पत्नियों की मनोवृत्ति पृथक आवासीय योजना में रहने वाली गोरी पत्नियों की मनोवृत्ति की तुलना में काफी परिवर्तित थी।

उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि बाधित सम्पर्क स्थापित किये जाने पर विभिन्न समूहों को एक दूसरे को समझने का मौका अधिक मिलता है। इससे उसके मन में उत्पन्न गलतफहमियां दूर हो जाती हैं और व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति परिवर्तित कर लेता है।

11) **अतिरिक्त सूचनाएं (Additional Information):-** अतिरिक्त सूचनाओं द्वारा भी व्यक्ति में मनोवृत्ति परिवर्तन होता है। व्यक्ति को शिक्षा व प्रचार के लिये साधनों जैसे - रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र के माध्यम से नाना प्रकार की सूचनाएं दी जाती हैं यही नही बल्कि व्यक्ति स्वंय भी अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करके नाना तरह की सूचनाएं प्राप्त करता है। इन सूचनाओं के द्वारा ही व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है।

समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी परिस्थिति के 4 प्रकारों का वर्णन किया है -

1- **सामूहिक परिस्थिति तथा एकांत परिस्थिति**(Group Situation and Solitory Situation):- विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि यदि कोई सूचना व्यक्ति को एक ऐसी परिस्थिति में दी जाती है जहां बहुत से लोग एकत्रित हैं तो उसमें व्यक्ति की मनोवृत्ति में परिवर्तन एकांत परिस्थिति में दी गई सूचना की अपेक्षा अधिक होता है।

2- **प्रकट एवं गुप्त वादा**(Public and Private Commitment):- जब व्यक्ति अपने मतो को खुलकर लोगों के सामने रखता है तो उसे हम प्रकट वादा कहते हैं परन्तु जब व्यक्ति अपने विचारों को गुप्त रखता है यानि कोई उनके बारे में जान नही पाते हैं तो इसे गुप्त वादा कहा जाता है। अनेको अध्ययनों से स्पष्ट है कि प्रकट वादा की परिस्थिति में जब मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देश्य से कोई सूचना दी जाती है तो वह सूचना अधिक प्रभावकारी नही होती और यदि वही सूचना गुप्त वादा की परिस्थिति में दी जाती है तो उससे मनोवृत्ति परिवर्तन प्रभावकारी होता है। वादा करने की परिस्थिति भी एक महत्वपूर्ण कारक है जिससे मनोवृत्ति परिवर्तन प्रभावित होता है।

3- **समूह निर्णय**(Group Decision):- समाज मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि जब कोई सूचना समूहनिर्णय विधि द्वारा दी जाती है तो उससे मनोवृत्ति में अधिक परिवर्तन आता है। समूह निर्णय विधि वह विधि है जहां कई व्यक्ति एक साथ मिलकर किसी विषय पर चर्चा करते हैं। इसी चर्चा के माध्यम से उन्हें मनोवृत्ति में परिवर्तन करने के लिये विशेष सूचना भी दी जाती है। एक अध्ययन के अनुसार पशु के खास अंगो जैसे - हृदय, गुर्दा आदि जिसे मनुष्य भोजन के रूप में कम खाते हैं के प्रति गृहणियों में चली आ रही नकारात्मक मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना था। प्रयोगकर्ता द्वारा लेक्चर के माध्यम से उन अंगो की उपयोगिता बढ़ाने सम्बन्धी विशेष सूचना उन्हें दी गई इसके तहत एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें समूह की सभी गृहणियों ने खुलकर अपना मत रखा। परिणाम में देखा गया लेक्चर विधि द्वारा दी गई सूचनाओं से 30% और समूह निर्णय विधि द्वारा दी गई सूचनाओं से 32% गृहणियों ने अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाया।

4- **संस्कृति** (Culture):- सांस्कृतिक लक्षणों (culture traits) का मनोवृत्तियों के निर्माण विकास और परिवर्तन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग-अलग होती है जब एक संस्कृति के लोग दूसरी संस्कृति के लोगों के सम्पर्क में आते हैं तो संस्कृति के अनुसार उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन होता है।

6.5 मनोवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त

समाज मनोवैज्ञानिको द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है उन्हे चार श्रेणियों में बांटा गया है। जिनका वर्णन निम्न प्रकार है:-

6.5.1 संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त (Congnitive consistency theories):-

इस श्रेणी में आने वाले मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

(i) हाईडर का संतुलन सिद्धान्त

(ii) न्यूकाम्ब का ए-बी-एक्स सिद्धान्त

(iii) फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसन्नादिता का सिद्धान्त

(iv) राजेनवर्ग का भावात्मक-संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त

(v) सामंजस्य सिद्धान्त

(i) हीडर का संतुलन सिद्धान्त (Heider's Balance Theory) :-

हीडर (1946) ने संज्ञानात्मक व्यवस्था की अवस्था का वर्णन अपने सिद्धान्त में किया है जो बताता है किन दशाओं मे सामान्य संतुलन अंसतुलन में बदलता है और उस असंतुलन को बदल कर व्यक्ति किस प्रकार पुनः संतुलित अवस्था में आता है। ये तीन अवस्थाएं हैं:-

1- संतुलन की अवस्था या सामान्य अवस्था

2- असंतुलन की अवस्था जो ब्राहय कारकों के हस्तक्षेप से पैदा होती है।

3- संतुलन की अवस्था को पुनः प्राप्त करने हेतु परिवर्तन के लिए दबाब की अवस्था।

हीडर के अनुसार व्यक्ति (P) अन्य व्यक्ति (O) के प्रति किस प्रकार का मनोभाव रखता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों की किसी उभयनिष्ठ वस्तु (X) के प्रति कैसी पसंद है। इसलिए हीडर के प्रतिपादन को 'P-O-X प्रतिपादन' भी कहा जाता है। यदि दोनों व्यक्तियों P तथा O का मनोभाव उभयनिष्ठ वस्तु X के प्रति सकारात्मक है तो संज्ञानात्मक संतुलन होगा। इसी प्रकार यदि दोनों का मनोभाव कुछ धनात्मक तथा कुछ ऋणात्मक हो तो अंसतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। हीडर का मत है कि असंतुलन दबाब उत्पन्न करता है। मनोवृत्ति परिवर्तन इस दबाव की मात्रा पर निर्भर करताहै। यदि दबाव अत्याधिक है तभी मनोवृत्ति में परिवर्तन संभव होता है अन्यथा नहीं। जिसके फलस्वरूप वे उसी प्रकार से बनी रह जाती है।

(ii) संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त (Theory of cognitive Dissonance):-

इस सिद्धान्त में मनोवृत्ति तथा व्यवहार के बीच संगति का बहुत अधिक महत्व है ऐसा माना गया है। संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों में फेस्टिंगर, हाइडर और आसगुड के सिद्धान्त प्रचलित है। यहां केवल फेस्टिंगर और हाइडर के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है:-

संज्ञानपरक विसन्नादिता का सिद्धान्त (Theory of cognitive Dissonance) :-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फेस्टिंगर (1957) ने किया। फेस्टिंगर के अनुसार व्यक्तियों की मनोवृत्ति में एक दूसरे से संगति होती है। संज्ञानपरक तत्व का अर्थ किसी भी ज्ञान मत या विश्वास से हो सकता है जो वातावरण, उस व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में हो सकता है। विसन्नादिता का अर्थ है दो या दो से अधिक संज्ञानपरक तत्वों में असंगति (Inconsistency)। विसन्नादिता की मात्रा का निम्न सूत्र है –

$$\text{विसन्नादिता} = \frac{\text{महत्व x विसन्नादी तत्वों की संख्या}}{\text{महत्व x सन्नादी तत्वों की संख्या}}$$

यह सूत्र स्पष्ट करता है कि विसन्नादिता उतनी ही कम होगी जितना कि Dissonant और Consonant तत्वों में अंतर कम होगा। फेस्टिंगर के अनुसार विसन्नादिता की उपस्थिति व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से कष्टप्रद है।

मनोवृत्ति से सम्बन्धित संज्ञानात्मक तत्वों में यदि विसन्नादिता उत्पन्न कर दी जाये तो मनोवृत्ति बदल जाती है।

फेस्टिंगर तथा कार्लस्मिथ (1959) ने विसन्नादिता से सम्बन्धित तीन परिकल्पनाओं का परीक्षण कर इसे सत्यापित किया है -

1. व्यक्ति विसन्नादिता का अनुभव उस समय करता है जब उसे उसकी किसी व्यक्तिगत मनोवृत्ति के विरूद्ध कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है।
2. बाध्य करने की शक्ति अधिक होने पर विसन्नादिता अधिक होगी और यदि बाध्य करने वाली शक्ति कम हो तो विसन्नादिता की मात्रा अधिक होगी।
3. विसन्नादिता कम करने के लिए व्यक्ति बाह्य क्रियाओं के अनुरूप अपनी मनोवृत्ति बना लेता है। इस दिशा में जेनिस (1968) और कोहेन (1964) के अध्ययन उल्लेखनीय है।

मूल्यांकन (Evaluation) -

पक्ष:-

1. फेस्टिंगर का विसन्नादिता सिद्धान्त अत्यंत व्यापक तथा उपयोगी है। इसके आधार पर वृहद परिस्थितियों में मनोवृत्ति में आए परिवर्तन की व्याख्या सहज व तर्कपूर्ण ढंग से हो सकती है।
2. इस सिद्धान्त ने पुनर्बलन सिद्धान्त की इस मान्यता को गलत सिद्ध किया कि व्यक्ति पुरूस्कार या पुनर्बलन के कारण जल्दी सीखता है जबकि फेस्टिंगर ने पाया कि व्यक्ति उन कार्यों को जल्दी सीखता है जिनके लिए वह कठिन परिश्रम करता है या दुख भोगता है।

विपक्ष:-

1. संज्ञानात्मक विसन्नादिता सिद्धान्त की एक कमी यह है कि यह मनोवृत्ति परिवर्तन में निहित प्रेरणा की व्याख्या नहीं करता । विसन्नादिता सिद्धान्त की एक कठिनाई यह भी है कि आत्मप्रतिवेदित मापनियां जिनके द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन का मापन किया जाता है। वे वास्तव में मनोवृत्ति में शुद्ध परिवर्तन को नहीं वरन् मिथ्या और विकृत परिवर्तन को दर्शाती हैं।

(iii) रोजेनबर्ग का भावात्मक-संज्ञात्मक संगति सिद्धान्त (Rosenberg's Affective Consistency Theory):-

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक रोजेनबर्ग है। इस सिद्धान्त में उन्होंने मनोवृत्ति के दो तत्वों के बीच के सम्बन्धों पर अधिक बल डाला है।

रोजेनबर्ग ने अपने सिद्धान्तो में भावात्मक तत्व को साधारण ढंग से परिभाषित किया है परन्तु संज्ञानात्मक तत्व के साधारण अर्थ को थोड़ा विस्तृत किया है। इनके अनुसार संज्ञानात्मक तत्व का अर्थ मनोवृत्ति वस्तु के प्रति सिर्फ संज्ञान ही नही बल्कि उस वस्तु तथा व्यक्ति के अन्य महत्वपूर्ण मूल्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में एक विश्वास से भी होता है। रोजेनवर्ग का विचार था कि मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में जो भाव होता है वह उस वस्तु के प्रति व्यक्ति में पाये जाने वाले विश्वास से सहसम्बन्धित होता है।

रोजेनवर्ग ने संज्ञानात्मक तत्वो को मापने के लिये एक विशेष प्रविधि का भी वर्णन किया है जिसमें एक संज्ञानात्मक सूचांक ज्ञात किया जाता है। जो यह बताता कि व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके मूल्यांक से कहां तक संगत है। अगर किसी व्यक्ति में किसी मनोवृत्ति वस्तु के प्रति तीव्र धनात्मक भाव है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति संज्ञानात्मक भी अधिक होगा। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रोजेनबर्ग ने अपने सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके महत्वपूर्ण मूल्यों में संगत ढंग से स्थिर होता है।

रोजेनबर्ग के सिद्धान्त की निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाएं हैं:-

1. जब किसी मनोवृत्ति के भावात्मक व संज्ञानात्मक तत्व आपस में संगत होते हैं तो मनोवृत्ति में स्थिरता तथा दृढ़ता बनी होती है।
2. लेकिन जब मनोवृत्ति के इन दोनों तत्वों अर्थात भावात्मक तत्व तथा संज्ञानात्मक तत्व में असंगति उत्पन्न हो जाती है तो मनोवृत्ति में भी अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है तथा इसमें परिवर्तन की सम्भावना तीव्र हो जाती है।

रोजेनवर्ग की प्राक्कल्पनाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि वर्तमान स्थिर मनोवृत्ति के भावात्मक तत्व में परिवर्तन कर दिया जाए, तो एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी जिससे अपने आप ही दूसरे तत्व में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होने लगेगी।

रोजेनबर्ग के इस सिद्धान्त के कुल गुण निम्नलिखित हैं:-

1. रोजेनबर्ग के इस सिद्धान्त द्वारा मनोवृत्ति के संगठन तथा विघटन दोनों की व्याख्या हो जाती है। जब तक मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्व तथा भावात्मक तत्व में संगति होती है, मनोवृत्ति संगठित है परन्तु जैसे ही भावात्मक व संज्ञानात्मक तत्व में असंगति होती है मनोवृत्ति विघटित हो जाती है। इस सिद्धान्त के द्वारा मनोवृत्ति में हुए परिवर्तन की मात्रा की भी व्याख्या हो जाती है। यह सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि जिस सीमा तक भावात्मक तत्व में असंगति होगी मनोवृत्ति में उस सीमा तक परिवर्तन होगा।

इन गुणों के साथ-साथ इस सिद्धान्त में कुछ अवगुण भी हैं:-

1. इस सिद्धान्त की सबसे प्रमुख बात यह है कि भावात्मक तत्व में परिवर्तन होने से संज्ञानात्मक तत्व में परिवर्तन हो जाता है। परन्तु इसे कुछ मनोवैज्ञानिको ने खण्डित किया है और कहा है कि सदा ऐसा नही होता है। संज्ञानात्मक तत्व में पहले परिवर्तन होता है और बाद में भावात्मक तत्व में।

2. इस सिद्धान्त में मनोवृत्ति परिवर्तन के अन्य नियमों जैसे - सीखना एवं पुनर्बलन नियमों के बावजूद भी रोजेनवर्ग का सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी रोजेनबर्ग का सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(iv) सामंजस्य सिद्धान्त (Congruity Theory):-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन औसगुड तथा टानेनवॉम ने किया है। इस सिद्धान्त के द्वारा मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या में मौलिक पूर्वकल्पना अन्य संगति सिद्धान्त के अनुकूल ही है - असंगति से मनोवृत्ति परिवर्तन के लिए व्यक्ति में दबाब उत्पन्न होता है। इसका अर्थ है कि जब मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्वो से असंगति उत्पन्न होती है तो इससे व्यक्ति में मनोवृत्ति परिवर्तन करके असंगति से उत्पन्न तनाव को दूर करने की प्रबलता बढ़ जाती है। सामंजस्य सिद्धान्त के अनुसार दो संज्ञानात्मक तत्व जो आपस में सम्बन्धित होते हैं, दोनों में परिवर्तन होता है ताकि सामंजस्य में वृद्धि हो सके तथा मनोवृत्ति परिवर्तन का स्वरूप स्थिर हो सके। इस तरह से इस सिद्धान्त में संज्ञानात्मक परिवर्तन की मात्रा तथा दिशा जिनसे सामंजस्य या संगतता में वृद्धि होती है के बारे में पूर्वानुमान होता है।

उदाहरण के लिये, कांग्रेस के किसी सदस्य के लिये आप दिन-रात मेहनत करके उसे चुनाव जिताते हैं और वह संसद का सदस्य बन जाता है तो इसके प्रति आपकी मनोवृत्ति अनुकूल है। मान लिया जाए कि संसद में एक खास प्रस्ताव आता है कि गौहत्या बन्द कर दी जाए। कांग्रेस इसका समर्थन करती है फिर भी प्रस्ताव पास नही हो पाता है क्योंकि अन्य दलों द्वारा इसका विरोध किया गया है। ऐसी परिस्थिति में क्या आपकी मनोवृत्ति सिर्फ कांग्रेस के प्रति परिवर्तित होगी या केवल राजनैतिक दलों के प्रति ही परिवर्तित होगी ? सच है कि आपकी मनोवृत्ति इन दोनों के प्रति परिवर्तित होगी ताकि एक सामंजस्य की स्थिति कायम हो सके।

6.5.2 सामाजिक सीखना सिद्धान्त (Social Learning Theories):-

इस श्रेणी के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं:-

(i) क्लासिकल अनुबंधन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त।

(ii) साधनात्मक अनुबंधन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त।

सामाजिक सीखना सिद्धान्त (Social Learning Theory):-

मनोवृत्ति परिवर्तन के इस सिद्धान्त का विकास क्लासिक अनुबंधन तथा साधनात्मक अनुबन्धन के पुनर्बलन नियमों पर आधारित है। क्लासिक अनुबन्धन नियम का जन्म पैवलव के प्रयोगात्मक कार्यों के परिणाम स्वरूप हुआ था। इस नियम का आधार पुनर्बलन था। इस नियम के अनुसार यदि एक स्वाभाविक उद्दीपक जैसे - भोजन के साथ दूसरा तटस्थ उद्दीपक जैसे - घंटी की आवाज बार-बार उपस्थित किया जाता है। तो कुछ प्रयास के बाद इस तटस्थ उद्छीपक के द्वारा ही स्वाभाविक अनुक्रिया जैसे - लार निकलना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के

प्रति होती थी, उत्पन्न होने लगती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि साहचर्य के आधार पर तटस्थ उद्दीपन में स्वाभाविक उद्दीपक का गुण उत्पन्न हो जाता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह देखना था कि क्लासिक अनुबन्धन के नियमों द्वारा किस तरह से किसी देश का नाम (जैसे - नीदरलैण्ड, मॉरीशस आदि) के प्रति और व्यक्तियो के नाम (जैसे - पीटर, जॉन्सन आदि) के प्रति कोई भी व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करता है। प्रायोगकर्ताओं ने 6 ऐसे देश के नामों को प्रयोज्यों को दिखलाया जिनके प्रति प्रयोज्यों की मनोवृत्ति प्रारंभ में न स्वीकारात्मक थी और न ही ऋणात्मक थी। कुछ नामो के साथ धनात्मक भाव उत्पन्न करने वाले शब्द जैसे - खुश, सुन्दर, अच्छा आदि भी दिखलाये गये तथा कुछ नामो के साथ ऋणात्मक भाव जैसे - तीखा, कुरूप, उदास आदि दिखलाये गये जिस तरह से पैवलव के प्रयोग में घंटी की आवाज (अनुबंधित उद्दीपक तथा भोजन (स्वाभाविक उद्दीपक) को एक साथ कई बार उपस्थित करने पर मात्र घंटी की आवाज से ही कुत्ता में लार स्राव की अनुक्रिया होती है ठीक उसी तरह से राष्ट्र एवं व्यक्तियो के नाम को जब कई बार धनात्मक एवं ऋणात्मक दूसरों के साथ-साथ दिखलाया गया तो राष्ट्र एवं नाम के प्रति प्रयोज्यों में उसी ढंग की मनोवृत्ति उत्पन्न होती थी जैसे कि धनात्मक एवं ऋणात्मक दूसरों को सुनने पर होती थी।

मनोवृत्ति परिवर्तन में क्लासिक अनुबन्धन के नियमों के अलावा साधनात्मक अनुबन्धन के नियमों को भी महत्वपूर्ण बताया गया है। साधनात्मक अनुबन्धन का सार तत्व यह है कि मानव व्यवहार उसके परिणामों पर आधारित होता है। एक प्रयोगकर्ता ने अपने प्रयोग में कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं के प्रति वाद-विवाद में कुछ प्रयोज्यों को पक्ष तथा कुछ को विपक्ष में बोलने को कहा। वाद-विवाद समाप्त होने पर कुछ प्रयोज्यों को प्रयोगकर्ता ने विजयी घोषित किया तथा कुछ प्रयोज्यों को हारने वाला घोषित किया। इसके बाद उसकी मनोवृत्ति मापी गई और देखा गया कि जिन्हें विजयी घोषित किया गया था, उन्होंने अपनी मनोवृत्ति में वाद-विवाद में अपनाये गये विचार के अनुसार परिवर्तन कर दिये। परन्तु जिन्हे हारने वाला कहा गया उनकी मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नही आया। सिंगर (Singer, 1961) ने भी अपने प्रयोग में बहुत कुछ ऐसा ही परिणाम पाया है। इसी तरह थार्नडाइक एवं स्कीनर ने अनेको प्रयोग से यह दिखा दिया है कि प्राणी का व्यवहार उसके परिणामों पर आधारित होता है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन साधनात्मक अनुबन्धन के नियमों के अनुकूल भी करता है।

6.5.3 कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theories):-

इस श्रेणी में निम्न सिद्धान्त आते हैं:-

(i) काट्ज तथा स्टॉटलैण्ड का सिद्धान्त

(ii) स्मिथ बुरनर एवं व्हाईट का सिद्धान्त

कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theories):-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन काट्ज और स्काटलैण्ड (1960) ने किया। इनके अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन तथा परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध को समझने के लिए मनोवृत्तियों के प्रेरणात्मक आधार का सहारा लिया है। काट्ज ने मनोवृत्तियों के निम्न चार कार्यों का वर्णन किया है:-

1- मूल्य प्रदर्षक कार्य (The value expressive Function):-

एक व्यक्ति को इससे संतुष्टि मिल सकती है जब वह अपनी मनोवृत्तियों की व्यक्तिगत मूल्यों और आत्म प्रत्यय से जोड़ता है।

2- ज्ञान प्रकार्य (The knowledge function):-

प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि उसमे चीजों को समझने हेतु ज्ञान होगा।

3- नैमित्तिक, समायोजनात्मक, उपयोगितावादी कार्य (The Instrumental Adjustive Utilitarian Functions) -

इसका अर्थ है कि व्यक्ति को जिन वस्तुओं से पुरूस्कार प्राप्त होता है उनके प्रति धनात्मक तथा जिनसे दण्ड मिलता है उनके प्रति ऋणात्मक मनोवृत्ति विकसित करता है।

4- अहं सुरक्षात्मक कार्य (Ego-defensive Function) :-

व्यक्ति को उसके स्वंय के प्रति दुखद सच्चाई की अनुभूति को रोकना तथा वातावरण की कठोर सच्चाई से रक्षा करना मनोवृत्तियों का मुख्य कार्य है।

6.5.4 विविध सिद्धान्त (Miscellaneous theories):-

इस श्रेणी के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं:-

(i) केलमैन का त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त।

(ii) आत्मसात्करण - विरोध सिद्धान्त।

(iii) अनुकूलन स्तर सिद्धान्त।

(i) त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त (Three Process Theory) :-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कैलमैन (1961) ने किया है। कैलमैन ने तीन प्रक्रियाओं की सहायता से मनोवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या की है इसलिए यह त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त कहलाता है। ये प्रक्रियाएं निम्नलिखित हैं:-

1- अनुवर्तन (Compliance):-यह वह प्रक्रिया है जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या समूह के विचारों या प्रभावों को इस कारण स्वीकार करता है कि वह भविष्य में इनसे लाभान्वित हो सकता है। दूसरे दूसरों में जब व्यक्ति पुरूस्कार पाने हेतु या दण्ड से बचने हेतु किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के विचार को स्वीकार करता है उसे अनुवर्तन कहते हैं।

2- तादात्मीकरण (Identification):-यह वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार, विचारों या प्रभावों को अपना लेता है।

3- आत्मीकरण (Internalization):-इस प्रक्रिया में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, प्रभावों या व्यवहारों को इसलिए स्वीकार करता है कि वह विचार, प्रभाव तथा व्यवहार उसके स्वंय के मूल्यों के समरूप होते हैं।

मूल्यांकन (Evaluation):-

किसलर (1969) ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा कि अनुवर्तन की प्रक्रिया का उपयोग बोधगम्य रूप से नहीं किया जा सकता और मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया इस प्रक्रिया के बिना भी सम्पादित हो जाती है।

(ii) आत्मसातकरण-विषमतासिद्धान्त (Assimilation Contrast Theory):-

आत्मसात-विषमता सिद्धान्त का प्रतिपादन शेरीफ तथा होभलैण्ड ने किया। इन दोनों मनोवैज्ञानिकों ने थर्सटन द्वारा मनोवृत्ति मापने के लिये विकसित मापनी से सम्बन्धित उस पूर्व कल्पना को चुनौती दी जिसमें कहा गया था कि निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति का प्रभाव मनोवृत्ति कथनों की तुल्याभासी अंतराल विधि के विभिन्न श्रेणियों में छांटने पर नही पड़ता है।

आत्मसात-विषमता सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के उद्देश्य से जब भी व्यक्ति को कोई सूचना दी जाती है तो इसकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर होती है कि व्यक्ति उस सूचना को किस तरह से स्वीकार करता है।

इस प्रक्रिया में 2 स्तरीय तथ्य होते हैं:-

1. सूचना प्राप्तकर्ता सम्बद्ध विषय के बारे में दी गयी सूचना का मूल्यांकन उसके बारे में अपने पास पहले से मौजूद रहे तथ्यों के आलोक में करता है।
2. इस मूल्यांकन के आधार पर सूचना प्राप्तकर्ता उस सूचना द्वारा प्रस्तावित तथ्य के आलोक में अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करके उसे आत्मसात कर लेगा या उस सूचना को अस्वीकृत कर देगा।

पहले चरण में सम्मिलित निर्णयात्मक प्रक्रिया को मद्देनजर रखते हुए शरीफ ने बताया है कि मनोवृत्ति परिवर्तन में दी गई सूचना की प्रभावशीलता निम्नांकित में से किसी भी प्रसार में हो सकती है।

1- स्वीकरण का विस्तार:- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तिकर्ता के मन से पूर्व से मौजूद तथ्यों के अनुकूल होते हैं और उसके आलोक में व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करता है।

2- अवचनबद्धता का विस्तार (Lattitude of noncomittments):- इस श्रेणी में वैसी सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से भिन्न होता है जिसके कारण व्यक्ति उसको ठीक ढंग से आत्मसात तो नहीं कर पाता है परंतु साथ ही साथ उसे अस्वीकृत भी नही कर पाता है।

3- अस्वीकारण का विस्तार (Lattitude of rejection):- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से बिल्कुल मेल नहीं खाते हैं। फलस्वरूप वह उसे अस्वीकृत कर देता है। परिणाम स्वरूप ऐसी सूचनाओं से सूचना प्राप्तकर्ता की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नही होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के बारे में पूर्व कथन करने के लिए यह तय कर लिया जाता है कि सूचना प्राप्तकर्ता की वर्तमान स्थिति या वर्तमान मनोवृत्ति जिसे आंतरिक स्थिरण बिन्दु कहते हैं तथा दी गई सूचना से उत्पन्न मनोवृत्ति में कितना अन्तर है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मनोवृत्ति परिवर्तन के लिए निम्न अवस्थाओं का होना आवश्यक है:-

1. शोधकर्ता को दिये गये विषय के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति के वर्तमान स्थिति का पता लगाना होगा।
2. उसके बाद यह तय करना होगा स्वीकरण के विस्तार कितनी है।
3. शोधकर्ता को यह देखना होगा कि व्यक्ति को दी जाने वाली प्रभावोत्पादक सूचना स्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में है या नहीं। उदाहरण - यदि सरकार की ओर से किसी स्थान पर मंदिर बनेगा परन्तु जनता दल इसका विरोध करती है। और दूसरी पार्टी इस घोषणा का स्वागत करती है फिर यह तय होता है कि मंदिर में मूर्ति केवल शिव जी की ही लगेगी। इससे जनता दल के लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन नही होगा क्योंकि यह घोषणा उनके अस्वीकरण के विस्तार में पड़ रहा है। अब दूसरी पार्टी के जिन सदस्यों को शिव जी में अधिक विश्वास है उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन कोई खास नही होगा।

इस सिद्धान्त के आलोचकों का मत है कि विस्तार के निर्धारण का कार्य में आत्मनिष्ठता अधिक होती है जिससे सिद्धान्त का पूर्वकथन संदेह के घेरे में आ जाता है।

6.6 सारांश

संक्षेप में यही कह सकते हैं कि हम विभिन्न उद्दीपकों तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रति जो प्रतिक्रियाएं या व्यवहार करते हैं वे हमारी प्रतिक्रियाओं या व्यवहार का ढंग हमारी मनोवृत्तियों द्वारा ही निर्देशित होता है। इस आधार पर मनोवृत्तियों का व्यापक प्रभाव हमारे सभी व्यवहारों, सोचने-समझने के तरीकों पर निश्चित रूप से पड़ता है इसलिए मनोवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है। अतः हम कह सकते हैं कि मनोवृत्ति के स्वरूप, विकास तथा परिवर्तन की प्रक्रिया को समझे बिना सामाजिक मनोविज्ञान तथा सामाजिक व्यवहार का ज्ञान अधूरा है। हमारे देश में ही नहीं अन्य देशों में हुए अध्ययन व शोधकार्य बताते हैं कि मनोवृत्तियां न केवल हमारे व्यवहार को समझने के सूत्र देती हैं वरन् उनके पूर्वकथन में भी सहायक होती हैं इसलिए मनोवृत्तियों के स्वरूप, विकास की प्रक्रिया तथा मापन के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

6.7शब्दावली

- **मनोवृत्ति परिवर्तन**: सापेक्षिक तौर पर मनोवृत्तियों में आये परिवर्तन को मनोवृत्ति परिवर्तन कहते हैं।

- **सम्प्रेषण:**अपने विचारों, भावनाओं तथा इच्छाओं को दूसरे व्यक्तियों के साथ बांटना या व्यक्त करना संप्रेषण कहलाता है।
- **प्रतिष्ठा निर्देष:**किसी सम्मानित या गणमान्य व्यक्ति के द्वारा दिये गये सुझावों और विचारों के अनुरूप व्यवहार में परिवर्तन प्रतिष्ठा निर्देश कहलाता है।
- **घटक:** किसी वस्तु के निर्माण में शामिल तत्वों को घटक कहा जाता है।

6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए:-

1. संज्ञानपरक-विसन्नादिता सिद्धान्त का प्रतिपादन .... ने किया है।
2. प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन .... ने किया है।
3. त्रि-प्रक्रिया सिद्धान्त .... ने प्रतिपादित किया है।

उत्तर: 1- फेस्टिंगर 2- काट्ज 3- कैलमैन

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, G.W.(1935)	:	Hand book of Social Pshychology (Clark University Press, Worcestor
Allport, F.H. & Katz, D (1931)	:	Student's Attitudes (Craftsman Press, Syracuse
Drever, James (1962)	:	A Dictionary of Psychology, Pengain Books, Harmondsworth, Middle Sex, U.S.A
Droba, D.D. (1933)	:	The Nature of Attitude, pp. 444-463, Journal of Social Psychology p.4.
Guttman, L.	:	A Basis for scaling Qualitative Data, pp. 139, 150, Amer. Social Rev., 9.
Kretch,D. & Crutchfield,(1982) R.S.	:	Individual IN Society
Kimball Young (1957)	:	A Hand Book of Social Psychology
Thurstone, L.L.	:	The Theory of Attitude Measurement, pp. 222-241, Pshycho. Bull. 36, 1929.

Secord & Beckman : Social Pshychology, 1964

डा0 आर.एन.सिंह (2008) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, हॉस्पिटल रोड, आगरा

Mishra Girishwar (2007) : Applied Social Psychology In India, Sage, Publication New Delhi.

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवृत्ति परिवर्तन क्या है ? इसे कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं ?
2. मनोवृत्ति में परिवर्तन कैसे होता है ? मनोवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रिया के मुख्य सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ?

इकाई-7 समूह का अर्थ, प्रकार, संरचना एवं कार्य (Meaning, Types, Structure and Functions of Group)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 समूह

7.4 स्वरूप एवं विशेषताएँ

7.5 समूह का वर्गीकरण या प्रकार

7.6 समूह की संरचना

7.7 समूह के कार्य

7.8 सारांश

7.9 तकनीकी पद

7.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है। वह प्रायः सामूहिक स्तर पर सामाजिक कार्यकलापों में भाग लेता है। व्यक्ति अपने परिवार में रहते हुए उसके सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करता है। परिवार के नियमों के अनुसार अपने आचरण को नियंत्रित करता है, तथा पारिवारिक सुरक्षा को बनाए रखने तथा उसके लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। समूह एक व्यापक शब्द है, और अनेक प्रकार की सामाजिक स्थितियों को इंगित करने के लिए इस शब्द का उपयोग किया जाता है। किसी खेल के लिए गठित टीम, बारातियों का दल, किसी कथा वाचक की कथा सुनने के लिए एकत्र लोग, किसी अधिकारी के समक्ष लोगों की परेशानियों का वर्णन करने के लिए कई लोगों का स्वतः गठित दल, दुर्गा पूजा समिति, शैक्षणिक यात्रा समूह एक मुहल्ले से दूर के विद्यालय में अध्ययन स्वयं सेवक दल इत्यादि समूह के उदाहरण है। समूह लोगों की एक जैसी

आवश्यकताओं के आधार पर स्वतः गठित हो जाते हैं अथवा उनका गठन प्रयत्न करके औपचारिक स्तर पर किया जाता है। समूह कुछ घण्टों या दिनों के लिए गठित हो सकते हैं। समूह और व्यक्ति के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। एक ओर समूह व्यक्ति के व्यवहारों, विचारों, अभिवृत्तियों एवं आवश्यकताओं को प्रभावित करते हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति समूह संरचना तथा कार्य-कलापों को प्रभावित करता है। व्यक्ति द्वारा सामूहिक स्तर पर किए जाने वाले व्यवहार, उनका निष्पादन स्तर अथवा निर्णय व्यक्ति स्तर पर किए जाने वाले व्यवहारों निष्पादनों तथा निर्णयों से भिन्न होते हैं। प्रत्येक समूह में व्यक्तियों के अलग-अलग स्थान होते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति अलग प्रकार की भूमिका का निर्वाह करता है।

समूह और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध का स्वरूप गतिकीय होता है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति और समूह के बीच का सम्बन्ध स्थिर एवं अपरिवर्तनीय न होकर अस्थिर एवं सतत् परिवर्तनशील होता है। परिणामसवरूप समूह संरचना तथा समूहों के प्रकार भी गतिकीय होते हैं।

समूह गतिकी क्या है? समूह गतिकी के अर्थ के सम्बन्ध में कई तरह के विचार मिलते है, जिससे इसके सही अर्थ को समझना कठिन सा बन गया है। एक विचार यह है कि समूह - गतिकी का तात्पर्य समूह-संगठन तथा संचालन के स्वरूप से है। इस विचार के समर्थकों ने प्रजातांत्रिक नेतृत्व सदस्यता - सहभागिता तथा सामूहिक सहयोग पर विशेष रूप से बल दिया है। दूसरा विचार यह है कि समूह - गतिकी का तात्पर्य भूमिका-निर्वाह समूह - चिकित्सा, संवेदनशीलता- प्रशिक्षण तथा अन्य सम्बद्ध प्रविधियों से है लेकिन ''लेविन (1944-1945) ने समूह गतिकी शब्द का उपयोग एक विशेष अर्थ में किया है। स्मरणीय है कि लेविन ने ही इस शब्द का उपयोग सबसे पहले किया। उनके अनुसार समूह गतिकी का अर्थ इस बात का अध्ययन करना है कि किस प्रकार के अध्ययन से परिवर्तन की संभावना अधिक होती हैं, तथा किस दिशा में परिवर्तन की सम्भावना अधिक होती है। (द्विवेदी 1979) ने इस रूप में गतिकी की परिभाषा देते हुए कहा कि समूह - ''गतिकी का तात्पर्य समूहों के अन्दर होने वाले परिवर्तनों से है। तथा इसका सम्बन्ध सामाजिक परिस्थितियों में समूह - सदस्यों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रिया तथा पक्तियों से है।''

रेबर एवं रेबर (2001)के अनुसार ''समूह गतिकी का अर्थ हैं समूहों का अध्ययन, जिसमें गत्यात्मक अन्तः समूह परस्पर क्रियाओं तथा अधिकार, अधिकार परिवर्तन, नेतृत्व, समूह निर्माण, एक समूह दूसरे समूहों के प्रति कैसे प्रतिक्रिया करता है, समग्रता, निर्णय लेना, आदि पर बल दिया जाता है।''

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि समूह - गतिकी के सम्बन्ध में तीन बातों का अध्ययन किया जाता हैं :-

1. किस प्रकार के समूह में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

2. किन परिस्थितियों में समूह में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

3. किस दिशा में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

समूह गतिकी अध्ययन के आशय: समूह गतिकी के सम्बन्ध में किये गये अध्ययनों से इसके अनेक आशय का पता चलता हैं, वाइट एवं लिपिट(1960) ने उस्सास के लड़कों पर कई प्रयोगात्मक अध्ययन किये। उन्होनें अपने अध्ययनों में सत्तावादी, प्रजातांत्रिक तथा ढीलाढाला नेतृत्वों के प्रभावों को देखने का प्रयास किया। देखा गया कि सत्तावादी नेतृत्व में शुरू में निष्पादन कम हुआ लेकिन धीरे-धीरे सामान्य स्तर तक पहुँच गया प्रजातांत्रिक की अपेक्षा सत्तावादी नेतृत्व में समूह के निष्पादन में विचलन अधिक पाया गया । यह देखा गया कि प्रजातांत्रिक नेता की अनुपस्थिति में निष्पादन सामान्य रहा, किन्तु सत्तावादी नेता की अनुपस्थिति में निष्पादन घट गया। बिल्कुल ढीलाढाला नेतृत्व में निष्पादन बहुत कम पाया गया। प्रजातांत्रिक नेतृत्व में सदस्यों में संतुष्टि, मित्रता, सहयोग, आदि विशेषताएँ पाई गयी जबकि सत्तावादी नेतृत्व में आक्रमणशीलता बैर-भाव आदि विशेषताएँ अधिक पाई गयी। बिल्कुल ढीलाढाला नेतृत्व में निष्पादन बहुत कम पाया गया। प्रजातांत्रिक नेवृत्व में सदस्यों में संतुष्टि, मित्रता, सहयोग, आदि विशेषताएँ पाई गयी जबकि सत्तावादी नेतृत्व में आक्रमणशीलता, बैर- भाव आदि विशेषताएँ अधिक पाई गयी। बिल्कुल नेतृत्व वाले समूह के सदस्यों में अधिक संतुष्टि नही पाई गयी। होमन्स (Homans,1950) ने समूह में संचालित पक्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उन्होनें बताया कि क्रिया के सामाजिक समूह में तीन तत्व होते हैं। क्रिया, पस्परिक प्रतिक्रिया, तथा मनोभाव (Sentiment)।क्रिया का अर्थ यह है कि प्रत्येक समूह का अपना एक विशेष कार्य या उद्देश्य होता है जिसको प्राप्त करने हेतु सदस्यगण प्रयास करते हैं। पारस्परिक प्रतिक्रिया का तात्पर्य उन व्यवहारों से है जो समूह - लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सदस्यों के बीच घटित होते हैं। मनोभाव का अर्थ वे मनोवृत्तियाँ है, जो सदस्यों के बीच विकसित होती है। समूह के इन तीनों तत्वों के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। किया एक तत्व में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव दूसरे तत्वों पर पड़ता है। अतः समूह एक इकाई के रूप में और एक विशेष पंक्ति के रूप में कार्य करता है। इस कारण सदस्य पर समूह का दबाव पड़ता रहता हैं। समूह द्वारा पुरस्कार पाने अथवा दण्ड से बचने के लिए व्यक्ति अपने समूह के सामने झुक जाता है जिसको अनुपालन कहते हैं जो सदस्य अपने समूह के मूल्यों या प्रतिमानों का उल्लघंन करता है तथा समूह - दबाव के सामने नहीं झुकता है, उसे दण्डित होना पड़ता है अथवा समूह से निकलना पड़ता है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जानेंगे कि :

- समूह किसे कहते है?
- समूह कि क्या विशेषताएँ होती है? अथवा समूह को एक दूसरे से किन किन आधारों पर पृथक कर सकते हैं।
- मनोविज्ञानिकों ने भिन्न- भिन्न आधारों पर समूह को भिन्न - भिन्न प्रकारों में विभाजित किया है। आप सभी प्रकारों की व्याख्या कर सकते हैं।
- सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। अतः इन दोनों पक्षों कों अलग-अलग समझ सकते हैं।

7.3 समूह

सामान्यतः समूह का तात्पर्य दो या अधिक वस्तुओं या व्यक्तियों संग्रह से है। इस अर्थ में दो या अधिक बिन्दुओं अथवा पुस्तकों के संग्रह को भी समूह कहेंगे। परन्तु सामाजिक या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समूह के लिए दो आवश्यक शर्ते हैं। पहली शर्त यह है कि वह दो या अधिक व्यक्तियों या प्राणियों का संग्रह हो और, दूसरी शर्त यह है कि उन व्यक्तियों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध हो। यदि दो अपरिचित व्यक्ति किया चौराहे पर एक ही साथ टहल रहे हों तो उन्हें समूह नहीं कहेंगें, क्योंकि उनके बीच कार्यात्मक सम्बन्ध या समान अनुभव का अभाव है। परन्तु क्या विक्रेता के द्वारा सम्बोधित किये जाने पर दोनों सामग्री को खरीदने के लिए आपस में समझौता कर ले तो इन्हें एक समूह मानेंगे, क्योंकि अब दोनों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। लिण्डग्रेन (1969) ने इसी अर्थ में समूह की परिभाषा देते हुए कहा है। ''दो या अधिक व्यक्तियों के किया कार्यत्मक सम्बन्ध में व्यस्त होने पर एक समूह का निर्माण होता है''।

व्यक्ति की तरह समूह की अपनी हस्ती होती हैजिसकी निश्चित विशेषताएँ होती हैं, जिनका निरीक्षण तथा मापन किया जा सकता है और जिनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती हैं। जब समूह का निर्माण हो जाता है तो इसके साथ ही एक विशेष संरचना विकसित हो जाती है। - समूह के सदस्यों की भूमिकाएँ निर्धारित हो जाती हैं और सभी सदस्य अपने अधिकार तथा कर्त्तव्य के आलोक में एक - दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया करने लगते हैं, जिसका उद्देश्य किसी समान लक्ष्य की प्राप्ति होता है। इस प्रकार समूह एक सामाजिक इकाई का रूप धारण कर लेता है। शेरिफ एवं शेरिफ (1956) ने इसी दृष्टिकोण से समूह की परिभाषा दी है कि, ''एक समूह एक सामाजिक इकाई है जिसमें कुछ व्यक्ति है जो एक दूसरे के प्रति अपेक्षाकृत निश्चित पद एवं भूमिका सम्बन्ध रखते है, और जिसके अपने प्रतिमान या मूल्य होते हैं। कम से कम समूह के प्रति परिणाम के मामले में सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करते है''। लेकिन, यह परिभाषा भी सामाजिक समूह के जटिल स्वरूप को स्पष्ट करने में पूरी तरह सफल नहीं है। इस सम्बन्ध में बेरोन तथा बिर्ने 2003 की परिभाषा अधिक संतोषप्रद है। उनके अनुसार

''समूह वह सामाजिक इकाई है, जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सामाजिक पारस्परिक क्रिया में लगे होते हैं, जो एक- दूसरे के साथ स्थिर संरचित सम्बन्ध रखते हैं जो एक दूसरे पर अवलंबित होते हैं, सामूहिक लक्ष्यों में साझेदार होते हैं। तथा इस बात का बोध रखते हैं कि वास्तव में वे एक समूह के अंग हैं''।

यह एक लम्बी परिभाषा है परन्तु काफी समग्र तथा संतोषजनक है इस परिभाषा में समूह पद की न्यूनतम आवश्यक विशेषताओं को शामिल किया गया है, जिनके बिना समूह के संप्रत्यय को भीड़ संग्रह पूर्णयोग या संकलन के संप्रत्यय से अलग करना संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से यह परिभाषा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

1. समूह एक सामाजिक इकाई है इस अर्थ में समूह वास्तव में संग्रह या पूर्णयोग से भिन्न हैं, क्योंकि इनमें सामाजिक इकाई पन का गुण नहीं होता है। अतः केवल ऐसे संग्रह को समूह कहा जाएगा जिसमें सामाजिक इकाई की विशेषता है।
2. इस सामाजिक इकाई में कुछ व्यक्तियों का होना आवश्यक है। सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो और अधिक-से अधिक कुछ भी हो सकती है। यह विशेषता समूह को मूर्त तथा विशिष्ट बना देती है।
3. समूह के सदस्यों के बीच कार्यात्मक संबंध पाये जाते हैं समूह के अन्तर्गत सदस्यों की स्थिति तथा उनके भूमिका - सम्बन्ध अपेक्षाकृत निश्चित तथा स्थिर होते हैं।
4. समूह में होने वाली क्रियाओं, सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों, समूह - इकाई के स्थायीकरण आदि विषयों से सम्बन्धित सदस्यों के अनुभव एवं व्यवहार को नियंत्रित तथा संचालित करने के लिए समूह में कुछ निश्चित मूल्य एवं प्रतिमान अवश्य होते हैं।
5. समूह के सदस्यों के सामने एक सामूहिक लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त करने के लिए वे सभी सक्रिय प्रयास करते हैं। यही लक्ष्य उनके बीच एकता भाईचारा तथा एकात्मा का मूल आधार होता है।
6. समूह के सदस्यों में इस बात का बोध होता है कि वे सभी एक खास समूह के अंश है। इसलिए समूह के प्रति उनमें निष्ठा का भाव पाया जाता हैं।

स्मिथ तथा मैक्की (Smith and Mackie1995) के द्वारा दी गयी परिभाषा से सभी उक्त बातों का समर्थन होता है। उन्होंने कहा है, ''सामाजिक समूह का तात्पर्य दो या अधिक ऐसे व्यक्तियों से है जो कुछ ऐसी सामान्य विशिष्टता में साझा करते है, जो उनके अपने अथवा दूसरों के लिए सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण होती है''।

7.4 स्वरूप एवं विशेषताएँ

भारत में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में समूह शब्द का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। समूह शब्द का उपयोग विविध प्रकार की स्थितियों में अनेक व्यक्यिों की अन्तक्रियाओं का द्योतन करने के लिए किया जाता है।

सामाजिक मनोविज्ञान में समूह शब्द का उपयोग एक निश्चित अर्थ में किया जाता है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति परस्पर अन्तर्क्रिया के लिए एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते है, परस्पर लगाव का अनुभव करते है तथा लगभग समान आख्याओं एवं अभिवृत्तियों के साथ निश्चित लक्ष्य या लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तो उन व्यक्तियों के संघात को समूह का नाम दिया जाता है। समस्त सामाजिक मनोवैज्ञानिक इसी अर्थ में समूह शब्द का उपयोग करते हैं। किन्हीं व्यक्तियों का संघात समूह है या नहीं निम्न चार विशेषताओं के आधार पर पहचाना जा सकता हैः

1. **परस्पर अन्तर्किया-** व्यक्तियों के संघात को उस समय समूह के रूप में माना जाता है जब वे व्यक्ति एक दूसरे के साथ आमने-सामने होकर दूरभाष से अथवा पत्राचार के माध्यम से परस्पर अन्तर्क्रिया करते हैं।
2. **अन्तर्वैयक्ति प्रत्यक्षीकरण**- जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे का प्रत्यक्षीकरण पारस्परिक समानता के आधार पर करें तो वे एक समूह का रूप ग्रहण कर लेते हैं । यहाँ प्रत्यक्षीकृत समानता का तात्पर्य यह है कि ये लोग एक दूसरे को एक प्रकार की ही स्थिति में पाते हैं और अनुभव करते हैं कि वे सभी एक ही प्रकार समस्याओं का सामना कर रहे हैं।
3. **सामान्य लक्ष्य-** समूह तब बनता है जब कुछ व्यक्तियों का एक सामान्य लक्ष्य होता है और समूह के लोग उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पारस्परिक अन्तर्क्रिया के एक ही प्रकार के नियमों या मानकों का पालन करते हैं। लक्ष्य अमूर्त और अन्तःस्थ भी हो सकते हैं । समूह निर्माण के लिए आवश्यक यह होता है कि ये लक्ष्य उन सभी व्यक्यिों के लिए मूल्यवान और आकर्षक हों। सभी लोग, जो समूह के सदस्य हों, उस लक्ष्य या उन लक्ष्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरित होते हैं।
4. **अन्योन्याश्रित सम्बन्ध-** समूह की अन्तिम विशेषता यह होती है कि प्रत्येक सदस्य की नियति दूसरे सदस्यों की नियति से जुड़ी होती है, अर्थात् सदस्यों की नियति में अन्योन्याश्रित का सम्बन्ध (Interdependent relationship) होता है। एक सदस्य के साथ होने वाली घटना से दूसरे सदस्य भी प्रभावित होते हैं। समूह की उपलब्धियों एवं असफलबाओं के सभी न्यूनाधिक मात्रा में सहभागी होते हैं। इस प्रकार जब कभी जिस भी स्थिति में अनेक लोगों की अन्तक्रिया में ये चार विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती है तो उन लोगों के संघ को समूह का नाम दिया जाता है।

उदाहरण के लिए मान लीजिए कि चार या पॉच एक दूसरे से अपरिचित छात्र अचानक किया जलपान गृह या उद्यान में एक साथ मिल जाते हैं और एक दूसरे को देखकर अनुभव करते हैं कि सभी लगभग समवयस्क हैं और सम्भवतः सभी छात्र है। परिचय का सिलसिला परस्पर बातचीत में परिवर्तित हो जाता है और अध्ययन अध्यापन की चर्चा छिड़ जाती हैं। चर्चा की अवधि में सभी इसका अनुभव करते हैं कि नगर में कोई ऐसा मंच नहीं है जहाँ छात्र एकत्र होकर बात कर सकें। इस सामान्य आवश्यकता का अनुभव एक सामान्य लक्ष्य को जन्म देता है, जिसकी प्राप्ति के लिए उपस्थित सभी

छात्र सामूहिक स्तर पर प्रयास करने का निश्चय करते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समय-समय पर कहीं मिलने और विचार को समृद्ध एवं अभिव्यक्ति क्षमता को प्रखर करने के लिए कुछ नियम बनाते हैं। परिणामस्वरूप एक समूह अपने आप बन जाता है। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार विकसित समूह में अन्तर्क्रिया , अन्तवैयक्तिक समानता का प्रत्यक्षीकरण, सामान्य लक्ष्य एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

7.5 समूह का वर्गीकरण या प्रकार

1. **कूले का वर्गीकरण** - कूले ने समूह को दो मुख्य भागों में बॉटा हैः

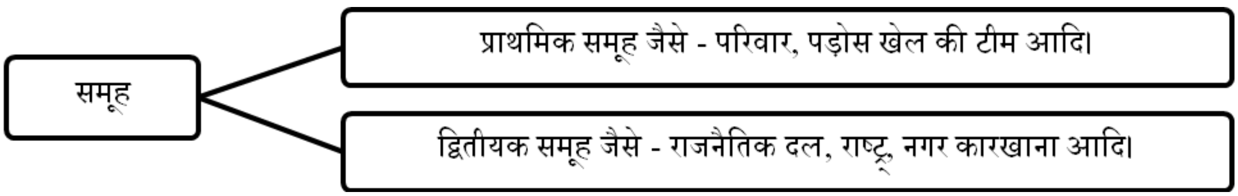

2. **सापिर का वर्गीकरण** - सापिर ने मुख्य तीन प्रकार के समूहों का वर्णन किया है।

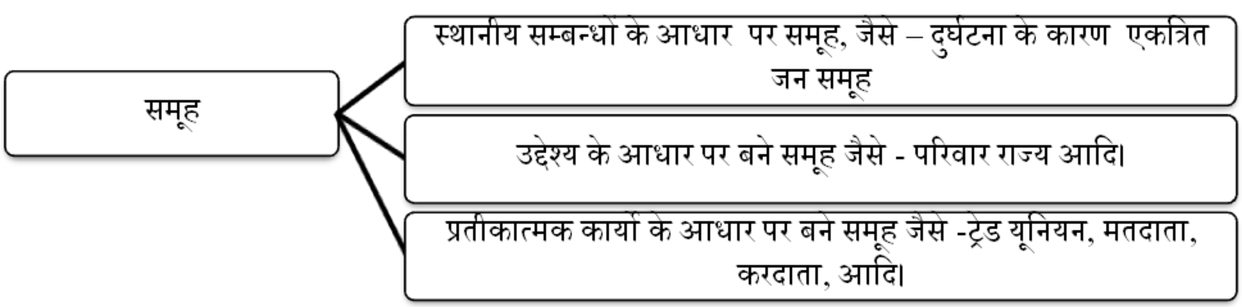

1. **समनर का वर्गीकरण** - समनर ने समूहों के मुख्यतः दो प्रकार बतलाए हैः

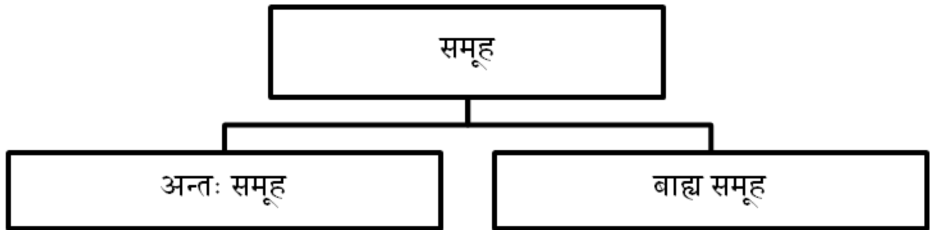

2. **मेकाइवर और पेज का वर्गीकरण** - मेकाइवर और पेज ने समूहों को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है:

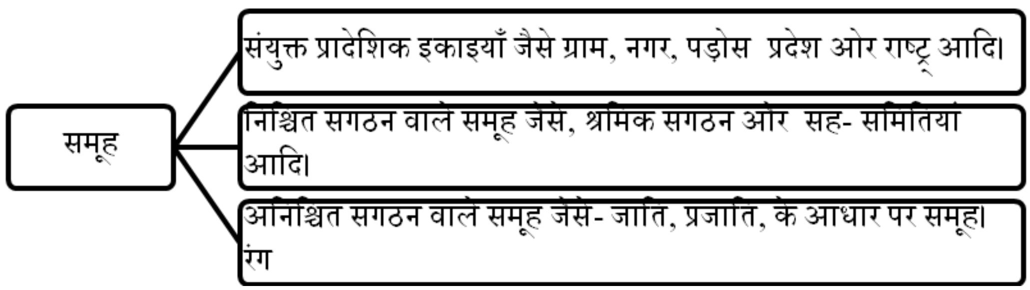

3. **गिलिन एवं गिलिन का वर्गीकरण** - गिलिन एवं गिलिन ने समूहों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है:

1. रिक्त स्थानों के आधार पर बने समूह जैसे- (1) परिवार (2) जाति
2. शारीरिक विशेषताओं से सम्बन्धित समूह
    - (1) शारीरिक विशेषताओं के आधार पर बने समूह
    - (2) लिंग के आधार पर बने समूह
    - (3) प्रजाति समूह

3. क्षेत्रीय समूह- (1) राज्य (2) राष्ट्र (3) जनजातियाँ।
4. स्थाई समूह या संस्कृति अभिरूचि पर आधारित समूह

जैसे:- (1) राज्य (2) कस्वे और शहर

(3) नगर (4) खानाबदोश समूह।

5. अस्थाई समूह या परिस्थिति की समीपता पर आधारित समूह

जैसे:- (1) भीड़ (2) श्रोता समूह

1. समूह के प्रकार

1. **अन्तः समूह -** समनर ने अन्तःसमूह शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1970 में किया। बाद में यह अन्तःसमूह ''हम समूह'' भी कहलाये। अन्तःसमूह के सदस्य समूह को अपना समूह समझते हैं। समूह के सदस्यों के बीच सहानुभूति होती है और सदस्यों के व्यक्तिगत कल्याण आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। उनमें सहयोग, मित्रता और एक दूसरे के प्रति विश्वास भी होता है। समूह के सदस्य अपनी संस्कृति, अपने देश अपनी भाषा आदि को बहुत अच्छा अथवा श्रेष्ट मानते हैं। अन्तः अहंवादी भी होते हैं। उनका व्यवहार दूसरे समूह के सदस्यों के साथ पक्षपातपूर्ण भी हो सकता है। उदाहरण के लिए खेल के समूह या परिवार।
2. **बाह्य समूह -** यह समूह भी समनर के ही वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है। यह समूह ''वे समूह'' या ''दूसरों का समूह'' भी कहलाते हैं। इस प्रकार के समूहों के सदस्य आपस में एक दूसरे से संवेगात्मक बन्धनों में बँधे हुए नही होते हैं। अतः इनमें मित्रता, सहानुभूति और सहयोग तथा विश्वास आदि का प्रभाव पाया जाता है। बाह्य समूहों के प्रति इनका व्यवहार घृणा और पक्षपातपूर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिए हम आध्यात्मवादी हैं और वह भौतिकवादी हैं, हम कांग्रेसी हैं, वह जनसंघी हैं, हम हिन्दू हैं, मलेच्छ हैं, आदि।
3. **प्राथमिक समूह -** प्राथमिक समूह कूले के वर्गीकरण के अन्तर्गत आता है कूले ने प्राथमिक समूह का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''प्राथमिक समूहों से तात्पर्य मेरा अर्थ उन समूहों से है, जिनमें आमने-सामने का घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग होता है। इस तरह के समूह अनेक अर्थो में प्रभावित होते हैं परन्तु मुख्यतः इस कारण से कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रवृत्ति एवं आदर्शों का निर्माण करने में मौलिक है''।

कूले ने आगे लिखा है कि इस प्रकार के समूहों में घनिष्ठ सहयोगी, सहानुभूति एवं सदभावनापूर्ण सम्बन्ध पाये जाते हैं। इस प्रकार के समूहों के उदाहरण हैं- परिवार, खेल के समूह एवं मित्र-मण्डली, पडोस आदि। प्राथमिक समूहों के सदस्य अपने समूह के अन्य सदस्यों के सुख-दुख को अपना सुख - दुख समझते हैं।

प्राथमिक समूहों को विशेषताएँ मुख्यतः दो प्रकार की हैः (1) प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषताएँ प्राथमिक समूहों की बाह्य विशेषताएँ। प्राथमिक समूहों की आन्तरिक विशेषताओं के अन्तर्गत कई विशेषताएँ है जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं।

1. उद्देश्यों की समानता होती है।
2. वैयक्तिक सम्बन्ध होता है।
3. स्वाभाविक सम्बन्ध होते हैं।
4. इन समूहों में चूंकि सदस्य एक- दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धत होते हैं और दूसरे को नियन्त्रित कर सकते हैं। अतः इन समूहों में प्राथमिक नियन्त्रण पाया जाता है।
5. सदस्य हर समय समूह के उद्देश्योंकी पूर्ति के लिए हृदय से तैयार रहते हैं अर्थात सदस्यों में सर्वागीण सम्बन्ध पाया जाता है।
6. माँ और बेटे के बीच सम्बन्ध क्रिया लाभ के लिए न होकर त्यागपूर्ण एवं सुख-शान्ति के लिए होते हैं। अर्थात सम्बन्ध स्वयं में साध्य है।

प्राथमिक समूहों की बाह्य विशेषताओं के अन्र्तगत निम्न महत्वपूर्ण विशेषताएँ होती हैं-

I. आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं।
II. सदस्यों की संख्या कम होती है।
III. सदस्यों के बीच घनिष्ठता होती है।
IV. इस प्रकार के समूह अधिक स्थाई एवं इसके सदस्यों के सम्बन्ध में निरन्तरता होती है।
V. इस प्रकार के समूहों का विकास क्रिया विशेषव्यक्ति के स्वार्थ की पूर्ति पर आधारित नहीं होती है। प्राथमिक समूह व्यक्ति और व्यवहार को प्रभावित करने की दृष्टि से बहुत अधिक महत्ववूर्ण होते हैं। प्राथमिक समूहों का महत्व निम्न है-
    i. इन समूहों का व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चा प्राथमिकसमूह परिवार से ही भाषा, रीति-रिवाज, आदर्श एवं मूल्य आदि सीखता है।
    ii. प्राथमिक समूह व्यक्ति के व्यवहार के नियन्त्रण में महत्वपूर्ण साधन है, जब परिवार में बच्चे पर माँ, पिता, बडे भाई-बहिनों द्वारा नियन्त्रण सम्भव है।

iii. प्रत्येक व्यक्ति इन प्राथमिक समूहों द्वारा ही आदर्ष गुण एवं उच्च मूल्य सीखता है, जैसे प्रेम, त्याग, स्नेह सद्धावना, सहयोग आदि।

iv. प्रत्येक व्यक्ति को आन्तरिक सन्तोष समूहों द्वारा प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति, हॅंसी, मजाक, सेवा, मेल, मुलाकात का आनन्द इन्हीं समूहों से प्राप्त करता है।

v. प्राथमिक समूह व्यक्ति को पशुता से मानवता या सामाजिकता की ओर जाने में सहायक है या सामाजीकरण में इनका महत्वपूर्ण योगदान हैं।

4. **द्वितीयक समूह** - द्वितीयक समूह प्राथमिक समूहों को अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ रखते हैं। कूले (1907) ने द्वितीयक समूहों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''द्वितीयक समूह वह समूह हैं जिनमें घनिष्ठता के अभाव के अतिरिक्त सामान्यतः उन विषेशताओं का अभाव भी होता है जो प्राथमिक एवं अर्द्ध-प्राथमिक समूहों में पायी जाती हैं।''

इस प्रकार के समूहों के मुख्यतः दो प्रकार होते हैं जैसे –

(1) सांस्कृतिक आधार पर गठित समूह:- सामाजिकता, राष्ट्रीय समूह, स्थानीय समूह, समुदाय प्रादेशिक समूह, प्रादेशिक समूह, कॉरपोरेशन, जनता एवं संस्थात्मक समूह आदि।

(2) सांस्कृतिक आधार के अतिरिक्त समूह के उदाहरण- प्रजाति, भीड, परिषद, लिंग समूह, आयु समूह आदि। इस प्रकार के समूहों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) इस प्रकार के समूहों का आकार बड़ा होता है।

(ii) इस प्रकार के समूहों के सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।

(iii) सदस्यों के सम्बन्ध अवैक्तिक होते हैं।

(iv) सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव होता है।

(v) इस प्रकार के समूहों की स्थापना जानबूझ कर की जाती है।

(vi) समूह के सदस्यों के उद्देश्यों में समानता नहीं होती है।

(vii) सदस्यों के सम्बन्ध केवल औपचारिक होते हैं तथा स्वार्थसिद्धि एवं प्रतिस्पर्धा पर आधारित होते हैं। इस प्रकार के समूहों को लैन्डिस ने शीतजगत कहा है। इन समूहों को शीतजगत इसलिए कहा जाता हैं क्योंकि इन समूहों में प्रेम, स्नेह, सद्भावना, सहयोग, मित्रता एवं घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्धों का अभाव पाया जाता है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर यह नहीं समझना चाहिए कि इस प्रकार के समूह मानव के लिए व्यर्थ होते हैं। इन समूहों का भी हमारे जीवन में महत्व है। इस प्रकार के समूह व्यक्ति के कार्यों एवं व्यवहारों का द्वितीयक नियन्त्रण करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन समूह की सभ्यता के विकास के लिए सहायक ही नहीं होते हैं अपितु इनके कारण सामाजिक परिवर्तन भी शीघ्र होते हैं। मिल,कारखाने, कालेज, मन्दिर, शहर, राष्ट्र आदि भी व्यक्ति के विकास क्षेत्र को अधिक विस्तृत बनाते हैं तथा व्यक्तियों को संतोष प्रदान करते हैं। ये समूह भी लोगों की आवश्कताओं एवं साधन पूर्ति में सहायक होते हैं। इन समूहों के कारण ही व्यक्ति विभिन्न कुशलताएँ सीखता है और विशेषीकरण प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए इन्हीं समूहों के कारण व्यक्ति कुशल डाक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक एवं इंजीनियर आदि बनते हैं।

प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह में निम्नलिखित अन्तर हैं :-

प्राथमिक समूह	**द्वितीयक समूह**
1. इसमें आमने-सामने के सम्बन्ध होते हैं। 2. यह आकार में छोटे होते हैं। 3. यह स्थानीय होते हैं। 4. यह ग्रामीण जीवन में अधिक पाये जाते हैं।	1. आमने-सामने के सम्बन्ध नहीं होते हैं। 2. यह आकार में बड़े होते हैं। 3. यह विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ समूह है। 4. यह शहरी जीवन में अधिक पाये जाते

5. इस समूह के सदस्योंद के सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं।	हैं। 5. इन समूहों के सदस्यों में सम्बन्ध अपेक्षाकृत उतने घनिष्ठ नहीं होते हैं।
6. समूह के सदस्यों के प्रत्यक्ष आमने - सामने के सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं ।	6. इस प्रकार के समूह के सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं।
7. इस प्रकार के समूह के व्यक्तियों के सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं।	7. इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध अवैयक्तिक होते हैं।
8. इनमें प्रेम, मित्रता, सहानुभूति, सहयोग आदि अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।	8. इनमें इन विशेषताओं का अभाव होता है। इसलिए यह समूह 'शीत जगत' कहलाते है।
9. इसमें स्वाभाविकता पायी जाती है।	9. इनमें अस्वाभाविकता होती है।
10. इन समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध स्थायी होते हैं।	10. इन समूहों के सम्बन्ध कम स्थायी होते हैं।
11. यह सरल समाज के प्रतीक है।	11. यह जटिल समाज के प्रतीक हैं।
12. इसके सदस्यों पर प्राथमिक नियंत्रण सम्भव है।	12. इसके सदस्यों पर द्वितीयक नियन्त्रण सम्भव है ।

5. **स्थायी एवं अस्थायी समूह-** वह समूह जिनका अस्तित्व दीर्घकाल तक रहता है वह स्थायी समूह कहलाते है। और वह समूह जिनका अस्तित्व कम समय के लिए होता है, वह अस्थायी समूह कहलाते हैं। स्थायी समूहों में पारस्परिक सहयोग, त्याग की भावना ही अधिक मात्रा में नहीं पायी जाती हैं वरन् समूह को स्थायी रखने वाली अन्य विशेषताएँ भी पायी जाती हैं। दूसरी ओर अस्थायी समूहों में स्थायी समूहों के विपरीत विशेषताएँ पायी जाती हैं।
6. **आकस्मिक एवं प्रयोजनात्मक समूह**– आकस्मिक समूह वह समूह है जो अचानक और अनचाहे ही बन जाते हैं। दुर्घटना के कारण एकत्रित भीड या रेलगाड़ी के डिब्बे की भीड़ इसी प्रकार के समूह के अन्तर्गत आते है। यह समूह अस्थायी होते हैं, परन्तु बहुधा समूह के सदस्यों में सहयोग की भावना पायी जाती है। बहुधा यह समूह संकटकालीन परिस्थितियों से परिस्थितियों से संघर्ष करता है। प्रयोजनात्मक

समूह उपरोक्त समूहों के विपरीत समूह है। इस प्रकार के समूह के नाम से ही स्पष्ट है कि समूह का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। इन समूहों का निर्माण कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। परन्तु आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के समूह आवश्यक हों।

7. **संगठित एवं असंगठित समूह -** संगठित समूह निश्चित समूहों के साथ-साथ सहयोग, विश्वास एकता एवं कुछ विशेष नियमों के आधार पर बनते हैं। सदस्यों को नियमों के अनुसार अनुशासन के घेरे में चलना पड़ता है। यह समूह कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनाये जाते हैं। बहुधा ऐसे समूहों का निर्माण समूह के उत्थान या प्रगति के लिए किया जाता है। दूसरी ओर असंगठित समूहों में संगठित समूहों की अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ रखते हैं। इन असंगठित समूहों के सदस्यों में पारस्परिक आकर्षक कम होता है। सिनेमा या क्रिया कार्यक्रम के सन्तुष्ट दर्शक या आन्दोलनकारी लोग इस प्रकार के समूहों के उदाहरण हैं।
8. **गतिशील एवं स्थित समूह-** अपने देश में गतिशील समूह भी पाये जाते हैं। यह गतिशील समूह है- खानाबदोश जत्थे। यह समूह अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक सुनियोजित एवं संगठित होते हैं। इन समूहों की अपनी अलग पहचान है। इन समूहों का एक निश्चित स्थान नहीं होता हैं। एक स्थान पर कुछ समय रहने के बाद यह समूह किसी दूसरे स्थान पर चला जाता है। इस प्रकार के समूह बहुधा गरीबी का शिकार हुआ करते हैं। अनेक जन-जातियाँ एवं कबीले ऐसे हैं जो आज यहाँ पर हैं तो कल अपनी रोटी के लिए या समूह के पालतू जानवरों के चारे के चक्कर में कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। स्थिर समूहों में इन गतिशील समूहों की अपेक्षा विपरीत विशेषताएँ पायी जाती हैं।
9. **सन्दर्भ समूह** - शेरिफ एवं शेरिफ (1968) के अनुसार ''सन्दर्भ समूह वह समूह है जिसमें व्यक्ति अपने आपको समूह के अंग के रूप में समझता है, या मनोवैज्ञानिक रूप से अपने को सम्बध रखने की आकांक्षा रखता है। बोलचाल की भाषा में सन्दर्भ समूह वह समूह हैं जिसके साथ व्यक्ति अपना तादात्मीकरण करता है या तादात्मीकरण की आकांक्षा रखता है''।

आज के आधुनिक औद्योगिक युग में व्यक्ति एक समय में कई - कई समूहों का सदस्य रहता है क्योंकि उसके विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति केवल एक या दो समूहों से ही नही हो पाती है। चूँकि वह एक समय में अनेक समूहों का सदस्य होता है। वह उन अनेक समूहों के सदस्यों के आदर्शो, मूल्यों नियमों एवं उद्देश्यों आदि का पालन नही कर पाता है और न ही इन्हें अपने व्यवहार एवं व्यक्तित्व का अंग बना पाता है। जिन सभी समूहों का सर्वाधिक पालन करता है, वह समूह ही सन्दर्भ समूह कहलाता हैं परन्तु आवश्यक नहीं है मनोवैज्ञानिक सदस्य भी हो सकता है। उदाहरण के लिए एक मध्यम श्रेणी या श्रमिक वर्ग का एक सदस्य चेतन या अचेतन रूप में अपने आपको एक उच्च वर्ग से सम्बन्धित मान सकता है तथा अपने रहन-सहन और अनुभवों को इसी उच्च वर्ग से सम्बन्धित करता है। ऐसा सदस्य वास्तविक रूप से मध्यम श्रेणी का सदस्य है परन्तु मनोवैज्ञानिक स्तर पर

वह उच्च वर्ग का सदस्य है। उच्च वर्ग उसका सन्दर्भ समूह है क्योंकि वह व्यक्ति उच्च वर्ग के विचारों, मूल्यों, आदर्शो एवं मान्यताओं को अपना मानता है। विलासी वर्ग का समाज में अधिक महत्व है क्योंकि धन के कारण इस वर्ग की स्थिति और प्रतिष्ठा अधिक है। साधारण वर्ग के लोग इस श्रेणी तक पहुँचने की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। यह ऊपरी दिखावा करके अपने आपको सन्तुष्ट कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में सन्दर्भ समूह व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करते हैं।

भीड़ –

भीड़ व्यक्तियों का वह अस्थायी, शारीरिक रूप से धन, प्रत्यक्ष सम्बन्ध वाला, असंगठित, स्वतः बन जाने वाला समूह है। भीड़ के सदस्यों का ध्यान किया सामान्य विषय या केन्द्र की ओर होता है। इसकी सीमाएँ पारगम्य होती है। भीड़ की आवश्यक एवं मौलिक विशेषता यह है कि भीड़ के सदस्य सामान्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक असभ्य होते हैं। उदाहरण के लिए किसी दुर्घटना के समय एकत्रित समूह भीड़ है। भीड़ की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

a. **अभिस्पन्द** (Polarization): भीड़ में अभिस्पन्दन पाया जाता हैं अर्थात् भीड़ के सदस्यों का ध्यान एक ध्यान के सामान्य केन्द्र, विषय या विचार की ओर होता है।
b. **अस्थिरता** (Instability): भीड़ अस्थिर होती है, भीड़ तब तक ही एकत्रित रहती है जब तक कि भीड़ में अभिस्पन्दन रहता है। अभिस्पन्दन समाप्त होते ही भीड़ समाप्त हो जाती है। भीड़ इतनी क्षणिक होती है कि इसके सदस्यों का पता लगाना कठिन हो जाता है।
c. **असंगठित** (Unorganized): भीड़ के पूर्व निश्चित उद्देश्य नहीं होते हैं। और न ही यह सुनियोजित होती है। वास्तव में भीड़ का न कोई पूर्व निश्चित नेता है और न सदस्य । यदि पूर्व निश्चित नेता या सदस्य हो जाय तो एकत्रित समूह को भीड़ नही कहा जायेगा।
d. **समान संवेग** (Common Emotion): भीड़ के अधिकांश व्यक्तियों के संवेग एक समान होते हैं। वह सदस्य जो भीड़ के मध्य में होते हैं। उनके संवेग एक समान हैं। मध्य के सदस्य की अपेक्षा भीड़ की सीमा के सदस्यों के संवेगों में मात्रा का अन्तर होता है।
e. **पारस्परिक प्रभाव** (Mutual Influence): भीड़ के व्यक्ति आपस में एक दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। भीड़ के सदस्य दूसरे अन्य सदस्यों को देखकर उतेजित होते हैं। एक व्यक्ति दूसरे को जैसा कार्य और व्यवहार करता देखता है स्वयं भी वैसा ही करने लग जाता है। इस पारस्परिक प्रभाव के कारण उनमें सुझाव ग्रहणशीलता अधिक होती है।
f. **स्थानीय वितरण** (Spatial Distribution): केवल ध्यान आकर्षित करने वाले केन्द्र के चारों ओर भीड़ होती है। भीड़ में आमने-सामने का सम्बन्ध तो नहीं कहेंगे परन्तु एक दूसरे के कन्धे रगड़ने

का सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है। भीड़ के सदस्य इस प्रकार का व्यवहार केवल एक स्थान विशेष पर ही करते हैं।

g. **सामूहिक शक्ति** (Mass Strength): भीड़ के सदस्य सामूहिक पंक्ति का अनुभव करते हैं। चूँकि भीड़ के सदस्य एक दूसरे के कार्य को देखकर उत्तेजना का अनुभव करते हैं। अतः भीड़ में एकत्रित अधिक संख्या के लोगों को देखकर भीड़ का सदस्य यह आभास कर सकता है कि उसके साथ इतने सारे लोग हैं , दूसरे शब्दों में वह सामूहिक पंक्ति का अनुभव करता है।

h. **श्रोता समूह** –

श्रोता समूह वह समूह है जिससे स्वीकृत प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार ही नहीं होता है वरन् इसका प्रारम्भ और समाप्ति भी औपचारिक होती है। श्रोता समूह के सदस्यों के बीच अन्तःक्रिया निम्न स्तर की होती है। श्रोता समूहों का पूर्व निश्चित उद्देश्य के साथ-साथ समय और स्थान भी निश्चित होता है। उदाहरण के लिए धर्म गुरू के प्रवचन को सुनता हुआ समूह, अध्यापक के व्याख्यान को सुनता हुआ समूह, सिनेमा हाल में बैठे हुए दर्शक आदि किसी न किसी प्रकार के श्रोता समूह हैं। श्रोता समूह की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

I. समूह का एक पूर्व निश्चित उद्देश्य होता है।
II. इस समूह का स्थान और समय निश्चित होता है।
III. श्रोता लोगों के बैठने या श्रवण के समय की एक विशेष स्थिति होती है। श्रोता वक्ता की ओर मुँह करके बैठते हैं। इस समूह में नैतिकता की भावना होती है।
IV. भीड़ की अपेक्षा बुद्धि का सामान्य स्तर उच्च होता है।

किम्बल यंग के अनुसार श्रोता समूह मुख्यतः तीन प्रकार के होत हैः

1. सूचना प्राप्त करने वाला समूह
2. अध्यापक का लैक्चर सुनने वाला समूह
3. मनोरंजन प्राप्त करने वाला श्रोता समूह
4. सिनेमा देखने वाला समूह
5. विचार परिवर्तन हेतु एकत्रित श्रोता समूह जैसे कथा सुनने को एकत्रित समूह।

7.6 समूह की संरचना

सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं, जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। अतः इन दोनों पक्षों का अलग-अलग उल्लेख आवश्यक है।

समूह संरचना का अर्थ यह देखना है कि किसी समूह में सदस्यों की संख्या कितनी है। उन सदस्यों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता कितनी है। उनके बीच सम्बन्ध कैसा है तथा उनके बीच संचार की व्यवस्था कैसी है। समूह की संरचना का अध्ययन आवश्यक इसलिए है कि इसका गहरा प्रभाव समूह के भिन्न-भिन्न कार्यों पर पड़ता है। समूह-संरचना की जटिलता बढ़ने से सदस्यों के व्यवहारों या समूह के कार्यों में भी आवश्यक परिवर्तन होते हैं। समूह - संरचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं-

I. **समूह का आकार-** समूह-संरचना का एक मुख्य तत्व समूह का आकार हैं इसका अर्थ यह है कि समूह कितने सदस्यों से संरचित है। किसी समूह में सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो और अधिक-से अधिक कुछ भी हो सकती है। अतः समूह के सदस्यों की न्यूनतम संख्या निर्धारित है, परन्तु अधिकतम संख्या निर्धारित या निश्चित नहीं हो। अध्ययनों से पता चलता है कि समूह के आकार के बढ़ने से समूह समग्रता, समूह प्रभावशीलता तथा समूह सम्बद्धता घटती है। अन्य बातें समान रहने पर बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह के सदस्यों का मनोबल अधिक सबल होता है, जिससे समूह लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो जाता है।

II. **सदस्य संघटन-** इसका अर्थ यह है कि किस प्रकार के सदस्यों से समूह संरचित है। समूहों का आकार समान रहने पर भी सदस्यों के व्यक्तित्व में भिन्नता होने के कारण उनके कार्य भिन्न हो जाते हैं तथा उनका प्रभाव समूह व्यवहार पर भिन्न- भिन्न रूप से पड़ने लगता है। किसी समूह की प्रभावशीलता वास्त में उसके सदस्यों की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। यदि दो समूहों में अलग-अलग पाँच-पाँच सदस्य हों, परन्तु पहले समूह के सदस्य शिक्षित ऊँचे पदों पर आसीन हों तथा दूसरे समूह के सभी या अधिकांश सदस्य अशिक्षित तथा बेरोजगार या निम्न पदों पर कार्यरत हों तो पहला समूह अधिक प्रभावशाली होगा, जिसका कारण समूह का आकार नही, बल्कि संघटन होगा।

III. **पद-अनुक्रम-** संरचनात्मक स्थिरता के दृष्टिकोण से समूहों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पदानुक्रम काफी स्थिर होता है। जैसे - उद्योग आदि औपचारिक समूहों के सदस्यों की भूमिका तथा स्थिति परिभाषित तथा निश्चित होती है। उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य मौखिक या लिखित नियमों एवं अधिनियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। इनके आलोक में ही उनके व्यवहारों का निर्धारण होता है। दूसरी ओर कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पद अनुक्रम स्थिर नहीं होता है। उनकी भूमिका तथा स्थिति पूरी तरह परिभाषित तथा निर्धारित होनी होती है। जैसे- मित्र मंडली, खेल-समूह आदि अनौपचारिक समूहों के सदस्यों के व्यवहार नियमों या अधिनियमों के आलोक में सदा निर्धारित नहीं होते हैं। अतः जहाँ औपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में पदानुक्रम की प्रधानता होती है। वहाँ अनौपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में उनके व्यक्तित्व - शीलगुणों का अधिक महत्व होता है।

IV. **संचार-जाल-** संचार-जाल के दृष्टिकोण से भी समूहों की संरचना में अन्तर पाया जाता है। संचार का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है। अथवा भेजी जाती है। संचार के भिन्न-भिन्न प्रतिरूप या ढ़ॉंचे हो सकते हैं। जैसे क्षैतिज संचार, उग्र संचार, मौखिक संचार, लिखित संचार, नीचे की ओर संचार, ऊपर की ओर संचार आदि । छोटे समूह में संचार- जाल सरल होता है। जबकि बडे समूह में जटिल होता है। छोटे समूह में प्रत्यक्ष संचार पाया जाता है जबकि बड़े समूह जटिल होते हैं। बडे समूह में अप्रत्यक्ष संचार देखा जाता है। परिवार, मित्र-मंडली, आदि प्राथमिक समूहों में क्षैतिज संचार अधिक पाया जाता है जबकि कार्य-समूह में उग्र संचार अधिक देखा जाता है। इन सबका प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में सदस्यों के व्यवहारों पर पड़ता है।

V. **बाह्य सामाजिक सन्दर्भ-** भिन्न-भिन्न समूहों की संचरना बाह्य संदर्भ के दृष्टिकोण से भी भिन्न-भिन्न होती है। क्रिया समूह की संरचना ऐसी होती है कि समाज के दूसरे समूहों से उसका सम्बन्ध अधिक विस्तृत एवं गहरा होता है। इसके विपरीत क्रिया समूह का यह सम्बन्ध सीमित तथा सतही होता है। अतः क्रिया समूह का सम्बन्ध कितना अधिक या कम विस्तृत है, इसका प्रभाव सभी सदस्यों पर पड़ता है। क्रेच आदि के अनुसार सामाजिक सन्दर्भ बढ़ने पर अनुपालन बढ़ता है। अर्थात् व्यक्ति समूह दबाव के सामने अधिक झुकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समूहों की संरचना में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता का गहरा प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारों तथा समूह कार्यो पर पडता है। जैसे - भारत में कठोर जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक पारस्परिक क्रियाएँ दूसरे देशों की तुलना में अधिक जटिल बनती जा रही हैं।

7.7 समूह के कार्य

समूहों के कार्यों को बतलाने के पहले यह कह देना आवश्यक है कि क्रिया समूह के कार्य की सफलता या जटिलता उसकी संरचना की सरलता या जटिलता पर निर्भर करती है । यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के समूहों के स्वरूप में अन्तर होने के कारण उनके कार्यों के स्वरूप में मात्रात्मक अन्तर हो सकता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए समूह के सामान्य कार्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता हैः-

I. **आवश्यकताओं की संतुष्टि-** समूह का प्रधान कार्य अपने-अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है। आवश्यकताएँ दो तरह की होती हैं (क) प्राथमिक आवश्यकताएँ तथा (ख) द्वितीयक आवश्यकताएँ। भोजन, पानी, वस्त्र, मकान, सुरक्षा, आदि की आवश्यकताओं को प्राथमिक आवश्यकता कहते हैं। इसी प्रकार यौन - आवश्यकता को भी प्राथमिक आवश्यकता कहा जाता है। इन आवश्यकताओं का तात्पर्य सम्बन्धन समूह (जैसे परिवार) के द्वारा होती है। द्वितीयक आवश्यकताओं

का तात्पर्य सम्बन्धन आवश्यकता, स्वीकृति-आवश्यकता, प्रतिष्ठा आवश्यकता, सम्मान आवश्यकता आदि से है। इन आवश्यकताओं की संतुष्टि प्राथमिक तथा द्वितीयक दानों प्रकार के समूहों द्वारा होती है। भिन्न- भिन्न सदस्यों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। अतः समूह सदस्यों की अलग-अलग आवश्यकताओं पर भी ध्यान देता है। सत्तावादी समूह की अपेक्षा प्रजातांत्रिक समूह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक ध्यान देता है। लेकिन इन दोनों प्रकार के समूहों में अधिक प्रभावशाली सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक होती है।

II. **आधिपत्य-आवश्यकता की संतुष्टि-** समूह के द्वारा व्यक्ति की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति होती है। सभी व्यक्तियों में दूसरे पर आधिपत्य प्राप्त करने तथा श्रेष्ट बनने की इच्छा होती है, परन्तु मात्रा का अन्तर होता है। समूह के कुछ सदस्यों में यह आवश्यकता या इच्छा अधिक तीव्र होती है और कुछ में कम तीव्र। जिस सदस्य में यह आवश्यकता अधिक तीव्र होती है वह नेता बनने का प्रयास करता है और अपने प्रयास में सफल बन जाता है तो उसकी यह आवश्यकता पूरी हो जाती है। यदि समूह का निर्माण न हो तो व्यक्ति की इस आवश्यकता की संतुष्टि नेता के रूप में नहीं हो सकेगी। यदि जनता पार्टी का निर्माण नही हुआ होता तो श्री मोरारजी देसाई या चौधरी चरण सिंह को भारत के प्रधानमंत्री के रूप में आधिपत्य आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती। समूह चाहे छोटा हो या बड़ा प्राथमिक हो या द्वितीयक, सत्तावादी हो या प्रजातांत्रिक, सबों के द्वारा कुछ सदस्यों की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति नेतृत्व की औपचारिक मान्यता का अभाव में भी होती है।

III. **सम्बन्धन-आवश्यकता की संतुष्टि-** समूह अपने सदस्यों की सम्बन्धन या सम्बद्धता- आवश्यकता की संतुष्टि करता हैं सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज या समूह में रहना है। यह एक सार्वजनिक प्रेरक है जो प्रत्येक व्यक्ति में रहता है चाहे इसकी मात्रा अधिक हो या कम। लेकिन व्यक्ति समूह में क्यों रहना चाहता है, यह एक जटिल प्रश्न है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति अपनी प्राथमिक तथा/अथवा द्वितीयक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रिया समूह में रहने के लिए इच्छा करता है लेकिन, शैष्टर के अनुसार इसका कारण चिन्ता है। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि कम चिन्तित व्यक्ति की तुलना में अधिक चिन्तित व्यक्ति में सम्बद्धता- आवश्यकता अधिक पाई जाती है। लैम्बर्ट आदि के अनुसार व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि के लिए क्रिया समूह से सम्बद्ध रहना चाहता है।

IV. **नई आवश्यकताओं का निर्माण** - मनुष्य की आवश्यकताएँ स्थिर नहीं होती हैं बल्कि व्यक्ति या वातावरण में परिवर्तन के साथ बदलती तथा विकसित होती रहती हैं समूह - सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्ति को नये अनुभव प्राप्त होते हैं जिनके कारण उनमें नई आवश्यकताएं विकसित होती हैं। समूह सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद जिन नई आवश्यकताओं का विकास होता हैं उनमें समूह के अस्तित्व को

कायम रखने की प्रवृत्ति प्रभावशाली सदस्यों में अधिक प्रबल दीख पड़ती हैं। कभी-कभी इस प्रयास का परिणाम उल्टा होता है। अधिकांश सदस्यों की इन आवश्यकताओं की समूह द्वारा संतुष्टि नहीं होने पर समूह में विघटन शुरू हो जाता है।

V. **समूह लक्ष्य प्राप्ति-** समूह लक्ष्य को प्राप्ति करना, प्रत्येक समूह का एक महत्वपूर्ण कार्य है। समूह लख्य का अर्थ वह लक्ष्य है जिसमें सभी सदस्यों की रूचि होती है। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं में भिन्नता होते हुए भी वे इस लक्ष्य के पूरा करने का प्रयास सामूहिक रूप से करते हैं। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका सामान्य लक्ष्य परिवार कल्याण या परिवार उन्नति है। इसी तरह द्वितीयक समूह का निर्माण एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। राजनीतिक समूह, धार्मिक समूह, सामाजिक संगठन, शैक्षिक संस्थान सबके निर्माण के पीछे कोई न कोई सामान्य लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त करने का काम समूह करता है इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्तिगत आवश्यकता तथा समूह लक्ष्य के बीच गहरा सम्बन्ध है। अतः सदस्यों के लक्ष्यों एवं उनकी आवश्यकताओं में परिवर्तन होने से समूह-लक्ष्य में भी परिवर्तन लाना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो समूह का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा।

VI. **समूह विचारधारा का सम्पोषण-** प्रत्येक समूह के अपने मानदण्ड मूल्य विश्वास तथा रीति-रिवाज होते हैं। जिन्हें सिद्धान्त या विचारधारा कहते हैं। इसका प्रभाव समूह के सदस्यों पर समान रूप से पड़ता है। इसलिए उनकी मनोवृत्ति, विचार, व्यवहार आदि में बहुत समानता पाई जाती है। प्रत्येक समूह अपने सिद्धान्त की सुरक्षा तथा इसके सम्पोषण का प्रयास एक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में करता है। समूह के इसी कार्य से कारण क्रिया समूह का केन्द्रीय स्वरूप कायम रह पाता है। जैसे - अनेक बाहरी आक्रमणों के होते हुए भी भारतीय हिन्दू समूह का केन्द्रीय स्वरूप आज भी कायम है।

VII. **अनेक समूहों की सदस्यता-** समूह अप्रत्यक्ष रूप से अपने सदस्यों को दूसरे समूह या समूहों के सदस्य बनने के लिए मजबूर करता है। इसके तीन कारण हैः-

i. समूह अपने सदस्यों की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है।
ii. समूह का कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे विशिष्ट होता जाता है और सदस्यों की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं।
iii. सदस्यों की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल समूह अपने आप में परिवर्तन नहीं ला पाता है।

इन तीनों कारणों का फल यह होता है कि समूह के सदस्य मजबूरन दूसरे ऐसे समूहों के सदस्य बन जाते हैं। जिनसे उनकी शेष आवश्यकताओं की पूर्ति होती है या होने की आशा रहती है। क्रेच आदि के अनुसार समूह कायह कार्य प्रभावशाली सदस्य या नेता की तुलना में साधारण सदस्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

VIII. **सामाजीकरण का साधन-** व्यक्ति के समाजीकरण में समूह एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है। सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के प्रतिमान मूल्य रीति- रिवाज आदि के अनुसार व्यवहार करना सीखता है । इसमें प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों समूहों का हाथ होता है लेकिन प्राथमिक समूह का हाथ अधिक होता है। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका प्रभाव बच्चों के समाजीकरण पर सबसे अधिक पड़ता है। इसके अलावा धार्मिक संगठन, सामाजिक संस्थान, राजनैतिक दल, आदि द्वितीयक समूहों का भी प्रभाव समाजीकरण पर पड़ता है।

इस प्रकार हमने देखा कि समूह के उपर्युक्त कई कार्य हैं। प्रत्येक कार्य अपने आप में महत्वपूर्ण है। फिर भी परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण उनके महत्व में कमी हो सकती है। एक परिस्थिति में जो कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है वही दूसरी परिस्थिति में कम महत्वपूर्ण हो सकता है। इसी प्रकार जो कार्य एक परिस्थिति में कम महत्वपूर्ण है, वह दूसरी परिस्थिति में अधिक महत्वपूर्ण हो जा सकता है।

7.8 सारांश

- समूह गतिकी का तात्पर्य समूहों के अन्दर होने वाले परिवर्तनों से तथा इसका सम्बन्ध सामाजिक परिस्थितियों से समूह सदस्यों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रिया तथा शक्तियों से है ।
- दो या दो से अधिक व्यक्तियों के ऐसे संघात को समूह के नाम से जाना जाता है। जब संघात के व्यक्ति परस्पर अन्तक्रिया के लिए एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं तो परस्पर लगाव का अनुभव करते हैं तथा रूझान आस्थाओं एवं अभिवृतियों के साथ किसी लक्ष्य या लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।
- मनोवैज्ञानिकों ने समूहों के विभिन्न प्रकार बताये हैं। अन्तःसमूह, बाह्य समूह, प्राथमिक समूह, द्वितीयक समूह ,स्थाई एवं अस्थाई समूह, आकस्मिक एंव प्रयोजनात्मक समूह, संगठित एवं असंगठित समूह गतिशील एवं विस्तृत समूह, संदर्भ समूह तथा भीड़ इत्यादि।
- सामाजिक समूह के दो आवश्यक पक्ष होते हैं जिन्हें संरचना तथा कार्य कहते हैं। समूह संरचना के सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं। समूह का आकार, सदस्य समूह संघात, पदअदानुक्रम, संचार जालएवं बाह्य सामाजिक संदर्भ।

- समूह के सामान्य कार्य निम्न हैं- आवश्यकताओं की संतुष्टि, आधिपत्य आवश्यकताओं की संतुष्टि, सम्बन्धन आवश्यकता की संतुष्टि, नई आवश्यकताओं का निमार्ण, समूह लक्ष्य प्राप्ति, समूह विचार धारा का समपोषण। अनेक समूहों की सदस्यता तथा सामाजीकरण का प्रत्येक कार्य अपने आप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

7.9 तकनीकी पद

1)	संघात	Aggregate
2)	संग्रह	Collection
3)	कार्यात्मक सम्बन्ध	Functional Relationship
4)	स्थायीकरण	Stability
5)	सामूहिक लक्ष्य	Common Goal
6)	भाईचारा	Togetherness
7)	एकात्मा	Solidarity
8)	समूह संगठन	Organization
9)	संचालन	Conduction
10)	अन्तः व्यक्तिगत प्रत्यक्षीकरण	Interpersonal Perception
11)	अन्योन्याश्रित सम्बन्ध	Interdependent Relationship
12)	सदस्य संघटन	Member Composition

7.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह गतिकी का अर्थ है?

   (क) समूह समग्रता

(ख) समूह प्रभाव शीलता

(ग) समूह के सदस्यों में होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न ऐसी शक्ति जो समूह के सार्थक रूप प्रभावित करे।

(घ) उपरोक्त सभी

2. किसी समूह का सार तत्व है।

(क) सदस्यों के बीच विभिन्नता (ख) सदस्यों के बीच समानता

(ग) सदस्यों के बीच अन्तः निर्भरता (घ) सदस्यों के बीच रागात्मक सम्बन्ध

3. सामाजिक समूह को किस व्यक्ति ने सर्वप्रथम प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह में विभाजित किया।

(क) मीड (ख) कूले (ग) लेविन (घ) इन में से कोई नही

4. निम्न लिखित कथनों में कौन सा गलत है?

(क) समूह के लिए कम से कम दो सदस्यों का होना आवश्यक है।

(ख) समूह के लिए एक निश्चित सामान्य लक्ष्य का होना जरूरी है।

(ग) समूह के लिए इसके सदस्यों में कार्यात्मक एकता अनिवार्य है।

(घ) समूह के लिए सदस्यों में अनुकूल मनोवृतियों का होना आवश्यक है।

5. निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है।

(क) प्राथमिक समूह सदा अचल समूह होता है।

(ख) संदर्भ समूह सदा द्वितीयक समूह होता है।

(ग) चल समूह के सदस्यों में अचल समूह की सदस्यों की अपेक्षा एकता का भाव अधिक होता हैं।

(घ) उपरोक्त सभी

6. समूह संरचना का तात्पर्य है?

   (क) समूह आकार (ख) समूह प्रभावशीलता (ग) समूह समग्रता (घ) समूह लक्ष्य

7. समूह के अधिकांश सदस्यों द्वारा स्वीकृत लक्ष्य कहलाता है।

   (क) समूह आदर्श (ख) समूह सर्वसम्मति (ग) समूह विचार (घ) समूह लक्ष्य

   उत्तर : 1. (ग) 2. (ग) 3. (ख) 4. (घ) 5. (ग) 6. (क) 7. (घ)

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा0 अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो0 लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ0 मुहम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 आर0 एन0 सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डॉ एस0एस0 माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समूह गतिकी से आप क्या समझते है? समूह गतिकीय के अध्ययनों के आशयों पर प्रकाश डालिये।
2. समूह किसे कहते हैं? इसके मुख्य प्रकारों का वर्णन करें?
3. समूह की परिभाषा दें तथा प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह के बीच अन्तरों में स्पष्ट करें।
4. समूह की संरचना तथा इसके कार्यों के वर्णन करें ।
5. सामाजिक समूह की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?
6. संगठित एवं असंगठित समूह के बीच तुलना करें?

इकाई-8 समूह प्रभावकता व समूह समग्रता:- आशय एवं निर्धारक तत्व (Group Effectiveness and Group Cohesiveness:- Meaning and Determinates)

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 समूहप्रभावशीलता
8.4 समूहप्रभावशीलता के निर्धारक
8.5 समूहसमग्रता का अर्थ
8.6 समूहसमग्रता के प्रभाव
8.7 समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले तत्व
8.8 सारांश
8.9 तकनीकी पद
8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

समाज के निर्माण में समूहों की मुख्य भूमिका होती है। व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के समूहों की सदस्यता ग्रहण करता है । समूहों के अपने आदर्श मूल्य मानक एवं विचार धाराएं होती है। इनका व्यक्ति के व्यवहार पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ता है। महात्मा गॉधी के प्रभाव में अनेक लोगों ने रेशमी और मंहगे वस्त्रों को त्याग दिया तथा वैभव विलास कीजीवन शैली का परित्याग कर खादी के कपड़ो में राष्ट्रीय स्वतंत्रा अभियान में सेनानी बन गये जब कि हिटलर के प्रभाव में आणित यहूदी मौत के घाट उतार दिये गये। इस प्रकार समाज समूह के सदस्यों के व्यवहारों को नियंन्त्रित करता है इनमें समूहप्रभावशीलता तथा समूहसमग्रहता विचार धारा प्रमुख है। इस इकाई में समूहप्रभावशीलता समूहसमग्रता के प्रभाव के सीमित अर्थ के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है।

8.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- समूहप्रभावशीलता क्या है।
- समूहप्रभावशीलता के किन करको द्वारा प्रभावित होती हैं।
- समूहसमग्रता क्या है?
- समूह- समग्रता का प्रभाव सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर कैसे पड़ता है।
- समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कौन-कोन से कारक हें जिससे समूहसमग्रता बढ़ सके।

8.3 समूह प्रभावशीलता

समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशासत्रियों ने समूह- प्रभावशीलता को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह एक ऐसा जटिल पद है जिससे भिन्न - भिन्न मापदण्डों के रूप में समझा जा सकता हैं जैसे - कुछ लोगों ने समूहप्रभावशीलता का अर्थ समूह उत्पादकता से लिया है। दूसरे शब्दों में, जिस समूह में सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन (जैसे प्रतिदिन कितना जूता बनाया जाता हैं या प्रतिदिन कितनी रोटी तैयार की जाती है।) किया जाता है उसे उतना ही प्रभावशील समूह समझा जाता हैं कुछ लोगों ने समूहप्रभावशीलता का अर्थ सदस्यों में उत्पन संतुष्टि से लिया है जिस समूह के सदस्यों में जितनी अधिक संतुष्टि होती है, उसे उतना अधिक ही प्रभावशील समूह समझा जाता है। कुछ ऐसे भी समाज मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होने समूहप्रभावशीलता का अर्थ समूह के सृजनात्मक परिणामों से लिया है। जिस समूह का सृजननात्मक परिणाम जितना ही अधिक होता है उसे उतना ही प्रभावशाली समूह समझा जाता है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि समूहप्रभावशीलता एक बहुविमीय चर है। एक ही समूह की प्रभावशीलता के बहुत से मापदण्ड होते हैं। एक ही समूह कुछ सदस्यों के लिए प्रभावशील हो सकता है परन्तु

दूसरे सदस्यों के लिए प्रभावशील नहीं भी हो सकता है जैसे- किया समूह के जिन सदस्यों का मूल उद्देश्य समूह की उत्पादकता देखना होता है वे उस समूहको प्रभावशील कहेगें जिसमें उत्पादकता अधिक है परन्तु जिन सदस्यों का मूल उद्देश्य उत्पादकता की ओर ध्यान न देकर कुछ विशेषआवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर ध्यान देना होता है। उनके लिए यह समूहप्रभावशील नहीं होगा।

यद्यपि समूहप्रभावशीलता के भिन्न-भिन्न मापदण्डों की व्याख्या समाज मनौवैज्ञानिकों ने की है, फिर भी उन लोगों ने प्रायः समूहप्रभावशीलता को मूलतः दो तरह के मापदण्डों के रूप में ही परिभाषित किया है। वे दो मापदण्ड हैं- समूह उत्पादकता तथा सदस्यों की ससन्तुष्टि। अतः निष्कर्ष यह हुआ कि वैसे समूहको प्रभावशील समूहकहा जायेगा जिसकी उत्पादकता सन्तोषजनक होती है तथा जिसके सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होती है। जहाँ तक समूह की उत्पादकता संतोषजनक होगी तथा सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होगी, समूह की प्रभावशीलता भी उतनी अधिक होगी।

8.4समूहप्रभावशीलता के निर्धारक

समूहप्रभावशीलता भिन्न-भिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है। कुछ समूह अधिक प्रभावशाली होते हैं। तो कुछ समूह अधिक प्रभावशाली होते हैं तो कुछ कम । इसका कारण यह है कि अधिक प्रभावशाली समूह में कुछ ऐसे कारक या निर्धारक होते हैं जो कम प्रभावशाली समूह में नहीं होते हैं। कुछ ऐसे ही कारक या निर्धारक जिनसे समूहप्रभावशीलता में मात्रात्मक अन्तर होता है। निम्नांकित है-

(क) समूहसंरचना से सम्बन्धत कारक

(ख) समूह अन्तक्रिया से सम्बन्धत कारक

इन दोनों तरह के कारकों की व्याख्या निम्नांकित है-

(क) समूहसंरचना के सम्बन्धत कारक -

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि समूहप्रभावशीलता पर समूह की संरचना से सम्बन्धत कारकों का प्रभाव काफी पड़ता है। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्नांकित चार ऐसे कारकों को महत्वपूर्ण बतलाया गया है-

1. **समूह का आकार:-** समूह का आकार से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से होता है। सदसयों की संख्या कम होने से समूह का आकार छोटा तथा सदस्यों की संख्या अधिक होने से समूह का आकार बड़ा होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्टतः पता चलता है कि छोटा समूह बड़ा समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि छोटे समूह में सदस्यों के बीच सन्तुष्टि, समूहसमग्रता तथा समूह उत्पादकता बड़े समूह की अपेक्षा अधिक होती है जैसे - सीशोर (1954) ने अपने अध्ययन में पाया है कि छोटे समूह में बड़े समूह की अपेक्षा समूहसमग्रता अधिक होती है जिससे सदस्यों में सन्तुष्टि भी अधिक होती

है। मान तथा बामर्गाटैल (1952) ने अपने अध्ययन में पाया है कि समूहसमग्रता कम होने से समूह में ऐच्छिक अनुपस्थिति बढ़ती है जो असन्तुष्टि का द्योतक है। स्लेटर (1958)ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि 5 सदस्यों वाले समूह में 5 से अधिक सदस्यों वाले समूह की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि थी। बड़े समूह के सदस्य अधिक आक्रमणकारी संवेदनशील तथा प्रतियोगी होते देखे गये है जिससे ऐसे समूह अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाते है। इतना ही नहीं कुछ लोगों ने जैसे मेरीऔट ने (1949) ने अपने अध्ययन में यह भी पाया है कि समूह के आकार द्वारा समूह की उत्पादकता भी प्रभावित होती है। इन्होंने इस अध्ययन में पाया कि 10 से कम सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता 30 से अधिक सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता से 7प्रतिशत अधिक थी । इसका मतलब यह हुआ कि समूह का आकार तथा समूह उत्पादकता में नकारात्मक सहै- सम्बन्ध है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे कार्टर एवं उनके सहयोगियों ने 1951 अपने अध्ययन में यह पाया है कि बडे समूह में कुछ ही सदस्य जो सबल होते हैं, भाग ले पाते है।, परन्तु छोटे समूह में सभी सदस्य खुलकर समूहविचार- विमर्श में भाग ले पाते है। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे समूह के सदस्यों में सन्तुष्टि बड़े समूह के सदस्यों की अपेक्षा अधिक होती है। इन विभिन्न अध्ययनों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छोटा समूह बड़ा समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है।

2. **समूहसंघटन:-** समूहप्रभावशीलता पर सिर्फ समूह के आकार का ही नहीं बल्कि समूह के संघटन का भी प्रभाव पड़ता है। समूह के संघटन से तात्पर्य सदस्यों की वैयक्तिक शीलगुणों तथा उनके सदस्यता प्रतिरूप से होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सदस्यों में जब कुछ खास-खास शीलगुण होते हैं तो वे प्रभावकारी सदस्य कहलाते है तथा साथ ही साथ समूह में प्रभावशीलता भी अधिक होती है। उसी तरह से इन लोगों के अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि एक विशेषतरह की सदस्यता प्रतिरूप रहने पर समूह की प्रभावशीलता अधिक होती है।

हेथौर्न 1963 ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि कुछ व्यवहारपरक शीलगुण जैसे सहैकारिता कार्यकुशलता तथा सूझ आदि के होने पर समूह की उत्पादकता बढ़ती है, अर्थात समूहप्रभावशाली होता हैं परन्तु जब सदस्यों में कुछ दूसरे शीलगुण जैसे अभिरूचि तथा सत्ताधारी प्रवृत्ति अधिक होती है तो इससे समूहसमग्रता तथा दोस्ताना संबंधों में कमी आती है और समूह उत्पादकता कम हो जाती है।

सदस्यता प्रतिरूप की दो विमाएँ है जिनका प्रभाव समूहप्रभावशीलता पर अधिक पड़ता है-एकरूपता तथा संगतता । समाज मनोवैज्ञानिको के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब सदस्यों के मूल्यों अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में एकरूपता या समानता होती हैं तो उनके द्वारा बनने वाला समूहस्थिर तथा समग्र होता है और सदस्यों में सन्तुष्टि एवं समूह उत्पादकता अधिक होती हैं हॉलिंगशेड ने 1949 मे अपने अध्ययन में पाया कि हाई स्कूल के लड़को एवं लड़कियों के वैसे समूह में सन्तुष्टि अधिक थी जिनकी अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में समानता थी। टरमैन तथा उनके सहयोगियों तथा पेटजेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने - अपने अध्ययनों में पाया

है कि जब पति -पत्नी की अभिरूचियों एवं मनोवृत्तियों में समानता होती है तो इससे उनका वैवाहिक जीवन अधिक सुखमय होता है। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि विशमांग समूह में उत्पादकता एकरूप समूह की अपेक्षा अधिक होती है। जैसे हाफमै ने 1959 ने अपने अध्ययन मे पाया कि आविश्कारषील समस्याओं के समाधान में विशमांग समूहएकरूप समूह की अपेक्षा अधिक श्रेष्ट था। परन्तु हॉफमैन ने निष्कर्ष को एक सामान्य निष्कर्ष नहीं माना जा सकता है क्योंकि कैटेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह साबित कर दिया है कि कुछ खास - खास शीलगुणों में विशमांगता रहने से समूहनिर्णायकता की यथार्थता अधिक होती है तथा कुछ खास -खास शीलगुणों में विशमांगता कम रहने पर समूहनिर्णायकता की यथार्थता कम होती है।

सदस्यता प्रतिरूप की दूसरी विमा संगतता है। समूहसंगत हो सकता है या असंगत। संगत समूह में एक ही केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है तथा इनके सदस्यों की अन्तर वैयक्तिक क्रियाओं में काफी समानता होती हैं। असंगत समूह में दो या दो से अधिक केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं जिनकी अभियरूचियाँ एवं मनोवृत्ति भिन्न होती हैं जिसके फलसवरूप इसके सदस्यों का कुछ उपसमूह भी बन जाता है शुज ने 1958 ने अपने अध्ययन में पाया है कि जब किया सरलतम समस्या का समाधान करना होता है तब तो इन दोनों तरह के समूहों की उत्पादकता में कोई विशेषअन्तर नहीं आता है। परन्तु जैसे - जैसे समस्या की जटिलता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे संगत समूह की उत्पादकता असंगत समूह की उत्पादकता की अपेक्षा तीव्र होती जाती है।

निष्कर्ष हुआ कि समूहप्रभावशीलता सदस्यों के खास-खास शीलगुणों एवं सदस्यता प्रतिरूप द्वारा भी प्रभावित होती है।

3. **पद श्रृंखला:-** समूहप्रभावशीलता पर पद श्रृंखला का भी प्रभाव पड़ता है। समूह में सदसयों की एक पद श्रृंखला होती हैं कुछ सदस्य इस श्रृंखला में ऊँचे पद पर होते हे। तथ कुछ सदस्य नीचे पद पर होते हैं। नीचे पद के सदस्य ऊँचे पद के सदस्यों के प्रति संचार अधिक करते है। थिबौट 1950 तथा केली के द्वारा सन 1951 द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि समूह में पद श्रृंखला द्वारा सदस्यों के बीच संचार प्रभावित होता है जिससे सदस्यों की कार्यकुशलता प्रभावित होती है। हिनकी तथा बेल्स 1953ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि वैसे समूह जिनमें सदस्यों की पद श्रंखला स्थिर होती है। उन समूहों की अपेक्षा अधिक प्रभावशील होते हैं जिनके सदस्यों की पद श्रृंखला अस्थिर होती है। जब पद श्रृंखला स्थिर होती है। तो सदस्यों में समसया के सही समाधान से संबंधित वाद-विवाद या मतभेद नहीं होता है और सभी लोग ऊँचे पद के सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गये मतों को या उनके द्वारा रखे गये सये समाधान को सहर्श स्वीकार कर लेते हैं। इस तरह से पद श्रृंखला में स्थिरता होने से समूह की प्रभावशीलता में वृद्धि हो जाती है।
4. **संचार प्रणाली:-** समूह की प्रभावशीलता पर समूह की संचार- प्रणाली का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः संचार प्रणालियाँ दो प्रकार की होती है जिनका प्रभाव समूह की प्रभावशीलता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। सामान्यतः संचार प्रणालियाँ दो प्रकार की होती है जिनका प्रभाव समूह की प्रभावशीलता पर स्पष्ट रूप से

पड़ता है। वृत्त जाल संचार तथा चक्र जाल संचार किया समूह में वृत्त जाल संचार के होने पर प्रत्येक सदस्य अपने बायें या दायें बैठे सदस्य के साथ संचार कर सकता है। परन्तु चक्र जाल समूह में किया खास सदस्य के माध्यम से ही अन्य सदस्य आपस में संचार कर सकते हैं। जैसे चित्र 10.1 (ब) में बीच का सदस्य अन्य सदस्यों के साथ सीधे संचार कर सकते हैं परन्तु अन्य सदस्य बीच के सदस्य की सहायता के बिना आपस में बातचीत नहीं कर सकते हैं।

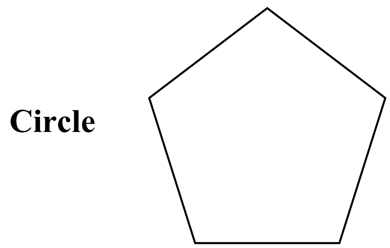

वृत्त जाल संचार

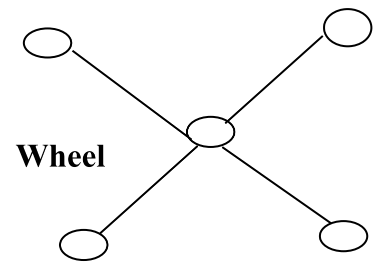

चक्र जाल संचार

लिभिट ने एक अध्ययन किया जिसमें पॉच-पॉच सदस्यों के कई समूह बनाये गये । कुछ समूह में वृत्त जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था तथा कुछ समूह में चक्र जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था। परिणाम में देखा गया कि दी गयी समस्या के समाधान में वृत्त जाल संचार वाले समूहने चक्र जाल वाले समूह की अपेक्षा अधिक तेजी से समस्या का किया। इतना ही नहीं इस तरह के समूहद्वारा समस्या के समाधान में कम से कम त्रुटि भी की गई बाद में 1954 ने अपने अध्ययनों के आधार पर लिभिट के प्रयोगात्मक तथ्य की पुष्टि की है। इन्होंने अपने प्रयोग में पाया कि साधारण समस्याओं के समाधान में चक्र - जाल संचार वाला समूह बृत्त जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशील होता है क्योंकि ऐसी समस्याओं के समाधान में उनके द्वारा कम से कम समय लिया जाता था। परन्तु जटिल समस्याओं के समाधान में वृत्त जाल संचार वाला समूहचक्र जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक आगे रहता था। बाद मे कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे क्रिस्टी 1952, एवं उनके सहयोगियों गिलक्राइस्ट 1955 तथा उनके सहयोगियों ने अपने - अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि जिस संचार प्रणाली में सम्बद्धता जितनी ही अधिक होती हैं।उस समूह की प्रभावशीलता उतनी ही ज्यादा होती हैं। यही कारण है कि इन लोगों ने अखिल प्रणाली संचार जाल को जिसमें सम्बद्धता अधिकतम होती है समूहप्रभावशीलता के लिए सबसे उत्तम संचार प्रणाली बतलाया है। इसे कम कौन संचार जाल भी कहा जाता है। अन्य दो तरह के संचार जाल तथा वाई संचार जाल में भी तुलनात्मक रूप से सम्बद्धता कम होती है। इसलिए इन दोनों तरह के संचार जाल में भी समूहप्रभावशीलता कम होती है।

(ख) अन्तः क्रिया समूह से सम्बन्धत कारक

समूह की प्रभावशीलता कुछ वैसे मध्यवर्ती चरों द्वारा भी प्रभावित होती है जिसका सम्बन्ध सदस्यों द्वारा की गई अन्तः क्रियाओं से होता है। ऐसे मध्यवर्ती चर तीन है। - नेतृत्व प्रकार, समूह कार्य प्रेरणा तथा मैत्री सम्बन्ध इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

1. **नेतृत्व प्रकार-** समूहप्रभावशीलता पर नेतृत्व प्रकार का भी असर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि यदि नेता प्रभावशाली होगे तो स्वभावतः समूहभी प्रभावशाली होगा। मायर तथा सोलेम 1952 ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया कि जिस नेतृत्व में समूह के अन्य सभी सदस्यों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया और साथ-साथ ही जिसमें प्रश्न पूछ कर सामूहिक क्रियाओं को उत्तेजित किया गया ऐसे समूहअन्य दूसरी तरह के नेतृत्व वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशील हो गये। पेल्ज 1956 ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि सहभागी नेतृत्व या प्रजातांत्रिक नेतृत्व में समूहप्रभावशीलता निदेशात्मक नेतृत्व में समूहप्रभावशीलता की अपेक्षा अधिक होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह भी पता चला है कि नेतृत्व व्यवहार के तीन पहलू ऐसे है जिनका समूहप्रभावशीलता पर सीधा असर पड़ता है। वे तीन पहलू है- नेताकीभूमिका निरीक्षण की संकीर्णता तथा कर्मचारी-अभिमुखीकरण कहै तथा काज के अनुसार नेतृत्व के ये तीनों पहलू कुछ ऐसे है जिनसे समूह की उत्पादकता सीधे प्रभावित होती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों की समीक्षा करने के बाद कहै तथा काज इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिन पर्यवेक्षकों (जो अपने समूह के नेता थे) ने सक्रिय होकर नेतृत्व की बागडोर को संभाला, उनके समूह की उत्पादकता अन्य समूहों की अपेक्षा काफी बढ़ गयी। उसी तरह से जिन पर्यवेक्षकों ने अपने समूह के कार्यों का निरीक्षण काफी कड़ी नजर रख कर किया उनके समूह की उत्पादकता कम हो गयी । कारण कड़ी नजर रख कर निरीक्षण करने पर कर्मचारियों को काम करने की स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचती थी। उसी तरह जो पर्यवेक्षक कर्मचारी उन्मुखी थे अर्थात जो कर्मचारी के कल्याण की बात अधिक सोचते थे उनके समूह की उत्पादकता अन्य पर्यवेक्षकों की अपेक्षा जो मात्र उत्पादन - उन्मुखी थे, अधिक थी।निष्कर्ष यह है कि नेतृत्व के प्रकार द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात समूह की प्रभावशीलताप्रभावित होती है।
2. **समूह कार्य प्रेरणा-** प्रत्येक समूह का एक लक्ष्य होता है। बहुत हद तक समूह की प्रभावशीलता समूह के सदस्यों में कार्य करके उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेने की प्रेरणा पर निर्भर करती है । वैसी प्रेरणा जितनी ही अधिक होती है समूह की प्रभावशीलता भी सामान्यतः अधिक होती है। डियुटश 1949 ने अपने अध्ययन में पाया कि जब समूह में सहैकारिता की प्रेरणा थी तो उसकी उत्पादकता तथा सदस्यों में सन्तुष्टि काफी अधिक थी। परन्तु जिन समूह के सदस्यों में प्रतियोगिता की प्रेरणा थी, उसके सदस्यों में असन्तोष तथा संघर्श की भावना अधिक थी। फल.स्वरूप इनकी उत्पादकता भी काफी कम देखी गयी। फोरिजोश 1950 तथा उनके

सहयोगियों ने अपने प्रयोग के परिणाम में पाया कि जब समूह के सदस्यों में आत्म-उन्मुखी आवश्यकता अधिक हो जाती है, तो सदस्यों में सन्तोष की मात्रा कम हो जाती है तथा साथ- ही-साथ संघर्श की भावना तीव्र हो जाती है। इस तरह की आवश्यकता अधिक सबल होने पर सदस्यों का ध्यान समूह के लक्ष्य की ओर कम परन्तु अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर अधिक रहता है। कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए सदस्यों के समूहलक्ष्य के प्रति अधिक प्रेरित करने की सिफारिश की है। थॉमस 1957 ने अपने अध्ययन में यह देखा कि जब सदस्यों को समूहलक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने में एक दूसरे पर निर्भर बना दिया जाता है और वे लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कार्य करेन की ओर अग्रसर होते हैं। कोच तथा फ्रेंच 1948 ने अपने अध्ययन में यह पाया कि जब सदस्यों द्वारा स्वयं ही समूह के लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है। तो वैसी परिस्थिति में वे उस लक्ष्य को सहर्श स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित हो उठते है। परन्तु यदि समूह का लक्ष्य उनपर नेता या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा थोप दिया जाता है तो वे उसकी प्राप्ति की ओर न के बराबर कार्य करने को प्रेरित रहते हैं। स्पष्ट है कि समूहलक्ष्य को निर्धारित करने में सदस्यों की सहभागिता से समूह अधिक प्रभावशाली बनता है।

3. **मैत्री सम्बन्ध-** समूह के सदस्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढ़ने से सदस्यों में सन्तुष्टि तथा खुषी अधिक हो जाती है परन्तु इससे समूहप्रभावशीलता का बढ़ना आवश्यक नहीं है।समूह की उत्पादकता जो समूहप्रभावशीलताका एक प्रमुख सूचक है पर मैत्रीपूर्ण संबन्ध का प्रभाव सामान्यतः दो तरह का होता है। पहैला, मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहने से सदस्यों के बीच संचार में वृद्वि हो जाती है, तथा सहभागिता में किया प्रकार का संकोच नहीं होता है इसका परिणाम यह होता है कि समूह की प्रभावशीलता अधिक बढ़ जाती है दूसरा, अधिक मैत्रीपूर्ण संबन्ध होने से सदस्य समूहलक्ष्य की प्राप्ति की ओर ध्यान कम देकर मात्र सामाजिक क्रियाओं से ही संतुष्टि प्राप्त करना प्रारंभ कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समूह की उत्पादकता कम होती है। दूसरे शब्दों में, यह समूह की प्रभावशीलता में कुछ कमी आ जाती है। इन दोनों तरह के प्रभावों के पक्ष में प्रयोगात्मक सबूत है। वान जेल्स 1952 ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया कि जिस समूह में मैत्रीपूर्णा संबंध अधिक था, उसमें कार्य संतोष अधिक था तथा साथ-ही-साथ समूह की उत्पादकता अधिक थी। हार्सफाल तथा अरेन्सबर्ग 1949 ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिस समूह में उत्पादकता तथा कार्यकुशलताअधिक थी उनमें सामाजिक क्रियाएँ कम होती थी। ऊपर के प्रयोगात्मक अध्ययनों से स्पष्ट है कि मैत्रीकपूर्ण संवंध द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात प्रभावशीलता तभी बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर दिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नही कर पाते है तो मैत्रीपूर्ण द्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात प्रभावशीलता तभी बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते है तो मैत्रीपूर्ण संवंध से समूहप्रभावशीलता नहीं बढ़कर मात्र सामाजिक क्रियाएँ बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर

लिया जाता है। जब वे इसे स्वीकार नही कर पाते है तो मैत्रीपूर्ण संबंध से समूहप्रभावशीलता नहीं बढ़कर मात्र सामाजिक क्रियाएँ बढ़ती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समूह की प्रभावशीलता अंशतः समूह की संरचना से संबन्धित कारकों द्वारा तथा अंशतः समूह के सदस्यों के बीच होने वाले अन्तःक्रियात्मक कारकों द्वारा निर्धारित होती है।

8.5समूहसमग्रता का अर्थ

समग्रता समूह की संरचना का एक प्रमुख विमा मानी गयी है । ऐसे तो समूहसमग्रता को भिन्न - भिन्न अर्थो में लोगों ने प्रयोग किया है परन्तु समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग एक खास अर्थ में किया है। समूहसमग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह के सभी सदस्य किस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं जिस सीमा तक समूह के सदस्य समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं। समूह की समग्रता उतनी ही अधिक समझी जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समूहसमग्रता यह बतलाती है कि सदस्यों के लिए समूह कितना आकर्शक है जिस कारण से भी सदस्यों के लिए समूह जितना ही आकर्शक होगा, सदस्य उतना ही समूह में बने रहना चाहेंगे और तब समूह की समग्रता उतनी ही अधिक होगी फेल्डमैन 1985 के अनुसार ''समूहसमग्रता से तात्पर्य उस सीमा से होता है जिस सीमा तक समूह के सदस्यों में सदस्य बने रहने की इच्छा होती है'' फेस्टिगर 1950 के अनुसार ''समूहसमग्रता उन सभी बलों के परिणामी होता है जो सदस्यों को समूह में रहने के लिए बाध्य करता है''। ऐसी ही अनेक परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें समूहसमग्रता के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त समूहसमग्रता के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

(1) समूह के सदस्यों द्वारा समूह जितना ही अधिक आकर्शक दीख पड़ता है। समूह में समग्रता उतनी ही अधिक होती है।

(2) समूह में समग्रता अधिक होने से सदस्यों में सन्तोष की भावना अधिक होती है।

(3) समूह में समग्रता होने पर सदस्यों को समूहलक्ष्य की ओर प्रेरित करने के लिए अधिक प्रयास तथा प्रोत्साहन की जरूरत नहीं पड़ती है।

(4) समग्र समूह अधिक स्थिर होता है तथा साथ ही साथ इसमें सदस्यों का मनोबल ऊँचा भी होता है।

8.6समूहसमग्रता के प्रभाव

समूह-समग्रता का प्रभाव सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ता है इस संदर्भ में समूहसमग्रता के निम्नलिखित प्रभाव महत्वपूर्ण है।

1. **समूहमनोबल:-** समूहसमग्रता का गहरा प्रभाव समूहमनोबल पर पड़ता है। समूह जिस हद तक आकर्शक होता है।, समूह का मनोबल उतना ही अधिक उच्च होता है। समूह के आकर्शक नहीं होने की स्थिति में समूह

के लक्ष्य या इसके सदस्य अथवा दोनों अस्वीकृत हो जाते हैं। समूह के प्रति निष्ठता का भाव तथा उत्तरदायित्व का भाव होना घट जाते हैं।

2. **समूह- प्रभावशीलता:-** कोलिंग 1962 ने अपने अध्ययन में पाया कि समग्रता तथा समूहप्रभावशीलता के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। क्रेज कचफिल्ड तथा बैलेची 1962 के अनुसार समूहप्रभावशीलता के दो मापदण्ड है (क) समूह- उत्पादकता तथा (ख) सदस्य संतुष्टि।

   जिस समूह की उत्पादकता अधिक होती है तथा इसके साथ-साथ समूह के सदस्यगण संतुश्ट रहते हैं। उस समूहको प्रभावशाली समूहमाना जाता है। समग्र समूह में ये दोनों विशेषताएँ पायी जाती है। ओलमैन 1960 के अध्ययन से भी पता चलता है। कि समूहसमग्रता का सार्थक प्रभाव समूहप्रभावशीलता पर पड़ता है।

3. **अहम् आवेष्टन:-** समूहसमग्रता का प्रभाव अहम् आवेष्टन के रूप में देखा जा सकता है। अहम् आवेष्टन का अर्थ है समूह के साथ आत्मकीकरण का भाव होना, समूह की सफलता की अपनी सफलता तथा समूह की विफलता को अपनी विफलता समझना। लिण्डग्रेन 1979 ने कहा है कि समूह में समग्रता की उच्च मात्रा से समूह के सदस्यगण अपने समूह के साथ आत्मीकरण इस हद तक स्थापित कर लेते हैं कि समूह की सफलता या विफलता उनकी अपनी बन जाती है।

4. **अन्यव्यक्ति आकर्शण:-** कई अध्ययनों से पता चलता है कि समूह की उच्च समग्रता की स्थिति में समूह के सदस्यों के बीच आकर्शण बढ़ जाता है बैक1951, डीयूश 1949, लेवी 1953 आदि ने इस संदर्भ में समूहसमग्रता के कई मानदण्डों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार उच्च समग्रता की स्थिति में -

   (i) समूह के सदस्य एक - दूसरे के प्रति अधिक शिष्ट बन जाते हैं।

   (ii) वे एक - दूसरे को अच्छी तरह समझने के योग्य बन जाते हैं।

   (iii) एक - दूसरे से बड़े पैमाने पर प्रभावित होते हैं।

   (iv) अधिक मित्रभाव विकसित हो जाता है। तथा

   (v) अपने समूह के मानकों का आन्तरीकरण अधिक संभव होता है।

5. **आंतरिक एवं बाह्य दबाव:-** समूहसमग्रता का प्रभाव आंतरिक दबाव या बाहरी दबाव के रूप में देखा जा सकता है। वह समूह जिस में उच्च समग्रता होती है। उसके सदस्य साथ-साथ रहने में आत्मसंतुष्टि महसूस करते है। वे अपने समूह तथा सदस्यों के साथ रहने के लिए आत्मप्रेरित होते हैं दूसरी ओर जिस समूह में निम्न समग्रता होती है, उसके सदस्यों को साथ-साथ रखने के लिए बाहरी दबाव की आवश्यकता होती है। जैसे - समूह से गैरहाजिर रहने या समूह कार्यों में सहभागिता नहीं देने पर सदस्यों को दण्डित किया जाता है। अतः यहाँ सदस्यगण दण्ड के भय के कारण साथ रहते हैं तथा सहभागिता दिखलाते है।

   इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समग्रता के प्रभावों को उपर्युक्त रूपों में देखा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि समूह- समग्रता का आकलन उपर्युक्त कसौटियों के आधार पर किया जा सकता है।

8.7 समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारक या निर्धारक

समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारक या निर्धारक है, जिन्हें निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:-

1) **समूह का आकार:-** समूहसमग्रता का एक निर्धारक समूह का आकार है। अध्ययनों से पता चलता है कि बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह में समग्रता अधिक होती है। एकाकी परिवारों तथा संयुकत परिवारों पर किये गये अध्ययनों से ज्ञातव्य है कि एकांकी परिवार में समग्रता की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है एकाकी परिवार में माता- पिता तथा बच्चे एक साथ हिल - मिलकर रहते हैं। और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक - दूसरे पर निर्भर करते है। परिवार के प्रति निष्ठा का भाव रखते है। लेकिन संयुक्त परिवार में ऐसी विषेशताओं का प्रायः अभाव ही रहता है।
2) **समूहसंघटक:-** अध्ययनों से पता चलता है कि जो समूह ऐसे सदस्यों से संरचित होता है, जो किया अन्य समूह से सम्बद्ध नहीं होते हैं। तो ऐस समूह में उच्च समग्रता पायी जाती है। कारण सदस्यों की रूचि केवल उसी समूह तक सीमित होती है दूसरी ओर जो समूह ऐसे सदस्यों से संरचित होता है। जो अन्य समूहया समूहों के भी सदस्य होते हैं तो उस समूह में निम्न समग्रता देखी जाती है। कारण ऐसे सदस्यों की रूचियाँ विभाजित होती है और प्रायः प्रतिस्पर्धी भी। कर्टलेविन 1948 ने अपने अध्ययन के आलोक में इस विचार को विधिवत रूप से प्रमाणित किया।
3) **समूहनेतृत्व प्रणाली:-** समूहसमग्रता पर समूह के नेतृत्व प्रणाली का गहरा प्रभाव पड़ता है लिपिट तथा हा्रइट 1943 ने समूहसमग्रता पर तीन प्रकार की नेतृत्व - प्रणालियों अर्थात् सत्तावादी प्रजातांत्रिक तथा मनमौजी के प्रभावों को समूहसमग्रता पर देखने के लिए एक क्लब के लड़कों पर प्रयोग किया। उनहोने निष्कर्ष के रूप में देखा कि प्रजातांत्रिक नेतृत्व प्रणाली वाला समूहसबसे अधिक समग्र था। कौकेट 1958 ने अपने अध्ययन में पाया की छोटे समूह में सत्तवादी नेतृत्व तथा बड़े समूह में प्रजातांत्रिक नेतृत्व की स्थिति में समग्रता अधिक पायी जाती है।
4) **समूहसंचार:-** समूहसमग्रता का एक निर्धारक समूहसंचार है। जिस समूह में प्रभावी संचार की व्यवस्था है, उसमें उच्च समग्रता पायी जाती है। लेकिन जिस समूह में संचार - बाधाएँ अधिक होती है। उसमें निम्न समग्रता पायी जाती है। उदग्र संचार की तुलना में क्षैतिज संचार में समूहसमग्रता अधिक होती है इसी तरह मौखिक संचार की अपेक्षा लिखित संचार की स्थिति में समूहसमग्रता अधिक होती है। गुजको 1964 तथा मैकग्रे्थ एवं आल्टमैन 1966 ने अध्ययन से प्रमाणित होता है कि समूह के सदस्यों में संचार जितना अधिक प्रभावी होता है। समूहसमग्रता उसी अनुपात में अधिक होती है।

5) **समूहलक्ष्य:-** समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले कारकों में समूहलक्ष्य या समूह कार्य भी एक महत्वपूर्ण कारक है जब समूहलक्ष्य या समूह कार्य ऐसा होता है जिसमें समूह के सभी सदस्यों की रूचि लगभग समान होती है। तो समग्रता अधिक पायी जाती है। लेकिन समूहलक्ष्य में सदस्यों की घटती हुई रूचि के साथ समूहसमग्रता घटती जाती है। इसी तरह जिस समूह में वैयक्तिक लक्ष्यों की प्रधानता होती है उसमें निम्न समग्रता पायी जाती है। एरिकसन 1947 के अनुसार वैयक्तिक लक्ष्यों की स्थिति में अहम् तादात्मय तथा समूहतादात्मय घट जाता है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव समूहसमग्रता पर पड़ता है।
6) **पदानुक्रम:-** समूहसमग्रता पर समूह के सदस्यों के बीच पदानुक्रम का प्रभाव भी आवश्यक रूप से पड़ता है। जिस समूह में पदानुक्रम योग्यता, योगदान, उपलब्धि आदि के अनुकूल होता है, उस समूह में उच्च समग्रता संभावित होती है। इसके विपरीत पदानुक्रम में जब सदस्यों की योग्यता उनकी सेवा या उपलब्धि को नजर अन्दाज कर दिया जाता है। तो सदस्यों में असंतोश एवं विद्रोह का भाव उत्पन्न होता है जिससे समूहमनोबल गिर जाता है और समग्रता निम्न बन जाती है। थिबौट 1950 का अध्ययन इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।
7) **समूहमानक संसक्तिः-** बैक 1951 के अनुसार जब सदस्यों में अपने समूह- मानकों के प्रति संसक्ति होती है तो समूहसमग्रता बढ़ जाती है यह संसक्ति जिस हद तक कम होती है, समूहसमग्रता भी उसी अनुपात में घट जाती है। शैष्टर 1951 ने भी कहा है कि समूहमानक के प्रति सदस्यों की संसक्ति से उनमें एकता का भाव बढ़ता है। समूह के प्रति निष्ठा का भाव बढ़ता है तथा सदस्य बने रहने की प्रेरणा सबल बन जाती है। लेकिन इस संसक्ति के अभाव से एकता खंडित होती है, निष्ठा का भाव घटता है तथा सदस्य बने रहने की प्रेरणा कमजोर हो जाती है।
8) **सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता:-** फीशर 1967 के अध्ययन से पता चलता है कि समूहसमग्रता पर सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता का प्रभाव पड़ता है। इस समानता की स्थिति में सदस्यगण अधिक आसानी से एक-दूसरे के निकट महसूस करने लगते है तथा एक- दूसरे के प्रति आकर्षित बन जाते हैं। सदस्यों के बीच सामाजिक दूरी घट जाती है और आकर्शण वढ़ जाता है। थिबौट तथा केली के अनुसार आकर्शण का एक मुख्य निर्धारक समानता कारक है। यह समानता जाति सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा, मूल्य, विश्वास आदि के संदर्भ में देखी जा सकती है।
9) **साझेदारी की आवश्यकता लिण्डग्रेन 1979:-**के अनुसार साझेदारी की प्रबल इच्छा की स्थिति में समूहसमग्रता बढ़ जाती है और इसके आभाव में यह घट जाती है लिण्डग्रेन 1997 ने कहा है कि बाह्य अधिकारी द्वारा आयोजित समूह की समग्रता अपेक्षाकृत कम होती है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण पर ध्यान दे। संघर्श टीम के सदस्यों का चयन सार्जेन्ट द्वारा अलग-अलग किये जाने के बावजूद

उनमें मिल जुलकर अपनी मंजिल हासिल करने की परस्पर इच्छा के कारण टीम की समग्रता उच्च बन जाती है।

10) **समूह-सदस्यों की संगतता:-** समूहसमग्रता पर सदस्यों की संगतता अर्थात् दूसरों के साथ मिल -जूलकर रहने की योग्यता का प्रभाव पड़ता है। समूहसदस्यों में यह योग्यता जितनी अधिक होती है समूह उतना ही अधिक समग्र बन जाता है। मूस तथा स्पीजमैन 1962 ने निम्न संगत सदस्यों की अपेक्षा उच्च संगत समूहसदस्यों वाले समूह में अधिक समग्रता पायी लेकिन मैक ग्रैथ 1962 के अनुसार सभी परिस्थितियों में संगतता का प्रभाव समूहसमग्रता पर अनुकूल नही पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समूहसमग्रता एक जटिल संप्रत्यय है, जिस पर उपर्युक्त कई कारकों का प्रभाव पड़ता है इसका व्यावहारिक पक्ष यह कि उपर्युक्त विवेचनों के आलोक में विभिन्न कारकों या निर्धारकों को अनुकूल बना कर समूहसमग्रता को बढ़ाया जा सकता है।

8.8सारांश

- समूहप्रभावशीलता एक बहुविमीय चर है फिर भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस बात की सहमति दी है कि समूहप्रभावशीलता को मूलतः दो तरह की कसौटियों के आधार पर ही समझना अधिक वैज्ञानिक होगा यह दो मापदण्ड समूह की उत्पादकता तथा सदस्यों की संतुष्टि यदि किया समूह में सदस्यों के बीच काफी संतोश होता है। तथा उस समूह की उत्पादकता अधिक है तो हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुचते है वे समूह अधिक प्रभावशाली है।
- समूह की प्रभावशीलता दो तरह के कारकों द्वारा प्रभावित होती है- समूह की संरचना से सम्बन्धत कारक तथा समूह के सदस्यों के बीच हई अन्तः क्रिया से सम्बन्धत कारक समूह की संरचना से सम्बन्धत कारक चार है समूह का आकार, समूह का संघटन पद श्रृंखला तथा संचार प्रणाली।
- समूह की प्रभावशीलता अन्तक्रियात्मक कारकों द्वारा भी प्रभावित होती है। इस में तीन कारक प्रमुख है नेतृत्व प्रकार समूह कार्य प्रेरणा तथा मैत्री सम्बन्ध।
- समूहसमग्रता समूह की संरचना की एक प्रमुख विमा है समूहसमग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है। कि समूह के सभी सदस्य इस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं जिस सीमा तक समूह के सदस्यों में बने रहने के लिए वे प्रेरित रहते हैं। समूह की समूहग्रता उतनी अधिक समझी जाती है।
- समूहसमग्रता का कुछ स्पष्ट प्रभाव भी देखने को मिलता है यही कारण है कि एक अधिक समग्र समूह के सदस्यों का व्यवहार एक कम समग्र समूह के सदस्यों के व्यवहारों से भिन्न होता है।
- समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूहसमग्रता के अनेक कारक बताये है इन कारकों द्वारा समग्रता सीधे प्रभावित होती है। इन कारकों में से प्रमुख कारक है। समूह का आकार, समूहसंघटक समूहनेतृत्व प्राणाली, समूहसंचार,

समूहलक्ष्य, पदानुक्रम समूहमानक संसक्ति, सदस्यों के बीच प्रत्यक्षीकृत समानता साझेदारी की आवश्यकता एवं समूह सदस्यों की संगतता।

8.9तकनीकी पद

1) विमा Dimension
2) अहम आवेष्टन Ego Involvement
3) समूहसंघटक Composition of the group
4) पदानुक्रम Status hierarchy
5) समूहमानक संसक्ति Adherence to group norm
6) साझेदारी Association
7) विसमांग समूह Heterogeneous
8) एक रूप समूह Homogencous
9) संगतता Compatibility
10) आत्मउन्नमुखी आवश्यकता Self oriented
11) उदग्र संचार Vertical Communication

8.10स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. समूह का सृजानत्मक परिणाम जितना ही अधिक होता है। तो वह समूहप्रभावशाली समूहमाना जाता है। (सत्य/असत्य)

2. समूहप्रभावशीलता एक बहुविमिय चर नहीं है। (सत्य/असत्य)

3. समूहप्रभावशीलता पर समूह की संरचना से सम्बन्धत कारको का प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य)

4. क्या कमकौन संचार जाल समूहप्रभावशीलता की उत्तम संचार प्रणाली है। (सत्य/असत्य)

5. क्या समग्रता समूह की संरचना का एक प्रमुख विमा नही मानी गयी है। (सत्य/असत्य)

6. क्या समग्र समूह अधिक स्थिर होता है। (सत्य/असत्य)

7. समूहसमग्रता हैमेषा एक समान रहती है। (सत्य/असत्य)

8. सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर समूहसमग्रता का प्रभाव पड़ता है। (सत्य/असत्य)

9. समूहसमग्रता समूह के नेता के व्यवहार द्वारा प्रभावित नहीं होती है। (सत्य/असत्य)

10. समूह की समग्रता का प्रभाव समूह की उत्पादकता पर पड़ता है। (सत्य/असत्य)

उत्तर : (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य(4) सत्य (5) असत्य

(6) सत्य (7) असत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

8.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा0 अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो0 लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ0 मुहैम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 आर0 एन0 सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा
- डॉ एस0एस0 माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समूहप्रभावशीलता की परिभाषा दें ? उन संरचनात्मक कारकों का वर्णन करें जिनसे समूह की प्रभावशीलता प्रभावित होती है ?
2. उन अन्तःक्रियात्मक कारकों का वर्णन करें जिनसे समूह की प्रभावशीलता प्रभावित होती है?
3. समूहसमग्रता क्या है ? समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन करें ?
4. समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले अन्तःक्रियात्मक कारकों का वर्णन करें ?
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये ?
   (i) समूहप्रभावशीलता
   (ii) समूहसमग्रता
   (iii) समूहअन्तःक्रिया से सम्बन्धत कारक
   (iv) समूहसमग्रता को प्रभावित करने वाले तत्व

इकाई-9 सामाजिक सरलीकरण,जनसंकुलन, समाजिक श्रमानवयन तथा निवैयक्तिता(Social Facilitation, Crowding, SocialLoafing, Deindividualization)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सामाजिक सरलीकरण क्या है

9.4 सामाजिक सरलीकरण के सिद्धान्त

9.4.1प्रणोदन सिद्धान्त

9.4.2मूल्यांकन आशंका सिद्धान्त

9.4.3चित्तविच्छेद द्धन्द सिद्धान्त

9.5 सामाजिक श्रमावनय

9.6 सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ

9.7 सामाजिक श्रमावनयन के कारण

9.8 सामाजिक श्रमावनयन को कम करने की प्रविधियाँ या उपाय

9.9 जनसंकुलन

9.10 निवैयक्तिता

9.11 सारांश

9.12 तकनीकी पद

9.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

व्यक्ति के व्यवहार पर समूह का गहरा प्रभाव पड़ता है व्यक्ति जिस समूह का सदस्य होता है। उस समूह के प्रति उसके कुछ कर्त्तव्य तथा कुछ अधिकार होते हैं व्यक्ति का यह अधिकार है कि वे अपने समूह से अपनी सुरक्षा अपने निर्वाह आदि आवश्यकताओं की पूर्ति की माँग करें इसके साथ - साथ उस का यह कर्त्तव्य है कि वे वह अपने समूह के मूल्यों व प्रतिमानों विश्वासों तथा मानदण्डों के अनुकूल व्यवहार करें तथा समूह निर्णय को स्वीकार करें। व्यक्ति समूहनिर्णय को कभी अपनी इच्छा से स्वीकार करता है तो कभी अपनी इच्छा के विरूद्ध। व्यक्ति अपनी जिन्दगी का अधिक समय साथियों, परिवार के सदस्यों, सहकर्मियों तथा छात्रों आदि के बीच बिताता है। ऐसे समूह का उनके व्यक्तिगत व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? प्रस्तुत इकाई में ऐसे प्रभावों का अध्ययन हम चार प्रमुख भागों में विभाजित करेंगे। सामाजिक सरलीकरण, सामाजिक श्रमावनयन, जनसंकुलन, एवं निवैयक्तिता।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चातआप –

- सामाजिक सरलीकरण अर्थात दूसरों की उपस्थिति मात्र से किया व्यक्ति का व्यवहार किस तरह से प्रभावित होता है।
- सामाजिक श्रमावनयन अर्थात दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य करने का स्तर किस तरह से नीचा हो जाता है।
- सामाजिक श्रमावनियन कि विशेषताएँ तथा इसको कम करने की क्या प्रविधियाँ है।
- जनसंकुल्न का मनोवैज्ञानिक प्रभाव जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले समूहप्रभावों का अध्ययन कर सकें।
- निवैयक्तिता क्या है जिसमें व्यक्ति अपने आप को समूह में पूर्णत समावेशित कर लेते हैं।

9.3सामाजिक सरलीकरण

सामाजिक सरलीकरण का अर्थः- सामाजिकरण सरलीकरण का अर्थ है दूसरों की उपस्थिति से किया व्यवहार या कार्य को करने में प्रोत्साहन मिलना इसी अर्थ में सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित करते हुए बेरोन तथा बिर्ने

2005 ने कहा है ''सामाजिक सरलीकरण का तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति के परिणामसवरूप के निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से है''

उदाहरण - प्रायः देखा जाता है कि जब व्यक्ति अकेले में काम करता है जो धीमी गति से कार्य करता है और जब वही व्यकित दूसरों के साथ कार्य करता है तो प्रायः तेज गति से काम करता है। कारण, दूसरों की उपस्थिति से व्यक्ति में प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न होता है, जिसे वह अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय बन जाता है। इसी प्रकार अकेले में व्यक्ति परोपकारिता अथवा सहायतापरक व्यवहार करने के लिए उतना प्रेरित नहीं होता है। जितना कि दूसरे लोगों की उपस्थिति में प्रेरित होता है। दैनिक जीवन की इन सभी घटनाओं से सामाजिक सरलीकरण का प्रमाण मिलता है।

आनुंभविक अध्ययन:- कई आनुभाविक अध्ययनों से भी सामाजिक सरलीकरण का समर्थ होता है ट्रिपलेट 1897 ने अपने अध्ययन में देखा कि साइकिल चलाने वाला व्यक्ति जब अकेले होता है तो वह धीमी गति से साइकिल चलाता है। इस अध्ययन स सामाजिक सरलीकरण की अभिधारणा को बल मिलता है

एक दूसरे अध्ययन में देखा गया कि सरल भूल-भुलैया की स्थिति में श्रोतागण की उपस्थिति से निष्पादन में वृद्धि हुई जबकि जटिल भुल-भुलैया की स्थिति में श्रोतागण की उपस्थिति से निष्पादन में ह्रास घटित हुआ।

पेसीन तथा हैसबेण्ड 1933 - ने अपने अध्ययन में पाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति की हालत में गुणा करने के कार्य में प्रयोज्यों ने एकान्त परिस्थिति की अपेक्षा अधिक कठिनाई का अनुभव किया, समय अधिक लगा तथा भूलें अधिक हुई।

निष्कर्ष के रूप में उन्होंने कहा कि सरल कार्य की स्थिति में सामाजिक सरलीकरण घटित होता है जबकि जटिल कार्य की स्थिति में सामाजिक सरलीकरण के विपरीत घटना घटती है।

9.4सामाजिक सरलीकरण के सिद्वान्त

सामाजिक सरलीकरण एक जटिल सामाजिक घटना है जिसकी व्याख्या के सम्बन्ध में कई सिद्वान्त विकसित हुए है। मुख्य सिद्वान्त निम्नलिखित है:-

1. प्रणोदन सिद्धान्त
2. मूल्यांकन आशंका सिद्धान्त
3. चित्तविच्छेद द्वन्द्व सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों का संक्षिप्त मूल्यांकन निम्नवत है-

9.4.1 प्रणोदन सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जाजोक (1965) ने किया। उन्होंने इस सिद्धान्त में सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या करते हुए बतलाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति का प्रभाव व्यक्ति के निष्पादन पर सदा एक तरह का नहीं होता

है। जब व्यक्ति किया विषय पर दूसरे लोगों की उपसिथति का प्रभाव नकारात्मक रूप से पड़ता है। अतः पहली स्थति में सामाजिक सरलीकरण तथा दूसरी परिस्थिति में सामाजिक श्रमावनयन की घटना घटित होती है।

हैण्ट तथा हिलेरी 1973 ने अपने अध्ययन में पाया कि दूसरे लोगों की उपस्थिति में छात्रों ने साधारण भूल - भुलैया से संबंधित समस्या का समाधान अपेक्षाकृत कम ही समय में कर लिया जब कि जटिल भूल-भुलैया से सम्बन्धत समस्या का समाधान अपेक्षाकृत अधिक किया।

बेरोन तथा बिर्ने 2005 ने इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हुए कहा कि प्रणोदन तथा सामाजिक सरलीकरण के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है । सामाजिक सरलीकरण वास्तव में दूसरे लोगों की उपस्थिति के साथ - साथ कार्य के स्वरूप तथा उसके अर्जन के स्वरूप पर निर्भर करता है। अतः यह सिद्धान्त सामाजिक सरलीकरण की घटना की समुचित व्याख्या करने में केवल आंशिक रूप से सफल है।

9.4.2 मूल्यांकलन आशंका सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कोटरेल 1972 के अध्ययनों पर आधारित है। यह सिद्धान्त सरलीकरण की व्याख्या में दूसरे लोगों की उपस्थिति को गौण मानता है और कार्य या व्यवहार करने वाले व्यक्ति के संज्ञान प्रधान मानता है कि उपस्थित लोग उसके कार्य का मूल्यांकन कर रह है। अतः सामाजिक सरलीकरण पर दूसरे लोगों की उपस्थिति के चेतना से हीं अधिक उनके कार्य को अधिक उत्प्रेरित होकर करने लगता है। जिससे सामाजिक सरलीकरण घटित होता है उसके विपरीत जब उस व्यक्ति को दूसरे लोगों की उपस्थिति से मूल्यांकलन किए जाने का एहसास नहीं होता है। तो सामाजिक सरलीकरण घटित नहीं होता है।

लेकिन यह सिद्धान्त भी सामाजिक सरलीकरण की समुचित व्याख्या करने में पूरी तरह सफल नहीं है। कारण, दूसरों की उपस्थिति से उत्पन्न मूल्यांकलन - भाव सामाजिक सरलीकरण का होना आवश्यक अतः यह सिद्धान्त भी सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या केवल आंषिक रूप से ही कर पाता है।

9.4.3 चित्तविच्छेद द्वन्द्व सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त की मूख्य प्रतिपादक बैरोन को माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक सरलीकरण का आधार दूसरे लोगों की उपस्थिति में किए जाने वाले कार्य के स्वरूप पर निर्भर करता है। जब कार्य सरल होता है तो दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य स्तर बढ़ जाता है जबकि जब कार्य जटिल तथा कठिन होता है तो दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य-स्तर गिर जाता है इसका कारण यह है कि सहैज तथा सरल कार्य की स्थिति में व्यक्ति को प्रणोदन स्तर ऊँचा हो जाता है। क्योंकि वह किया तरह के चित विच्छेद द्वन्द्व का अनुभव नहीं करता है दूसरी जटिल तथा कठिन कार्य की स्थिति में दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व का अनुभव व्यक्ति को अधिक होता है, जिस कारण प्रणोदन-स्तर निम्न बन जाती है और निष्पादन में मात्रात्मक तथा गुणात्मक गिरावट होने लगती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न नही समझा जाता है इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न नहीं होने पर व्यक्ति का कार्य-स्तर ऊँचा हो जाता है जिसको सामाजिक सरलीकरण का प्रभाव समझा जाता है। इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थितिसे चित्तविच्छेद - द्वन्द्व के उत्पन्न होने पर प्रणोदन स्तर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक सरलीकरण घटित नहीं होता है।

इस सिद्धान्त का एक मुख्य गुण यह है कि:-

1) इसमें कार्य के स्वरूप तथा व्यक्ति के प्रति बल स्तर या चिन्ता स्तर दोनों को सामाजिक सरलीकरण का निर्धारक माना गया है।
2) दूसरा गुण यह है कि इसमें चित्तविच्छेद-द्वन्द्व के महत्त्व को भी उजागर किया गया है। प्रबतल स्वर या चिन्ता स्तर बढ़ने के बाद भी यदि व्यक्ति द्वन्द्व का षिकार हो जाता है तो सामाजिक सरलीकरण के विपरीत घटित होता है।
3) इस सिद्धान्त का तीसरा गुण यह है कि यह सामाजिक सरलीकरण तथा दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों की उपस्थिति के बीच सीधा सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता है। कारण, यह सिद्धान्त सामाजिक सरलीकरण की उत्पत्ति में दूसरे लोंगों की उपस्थिति के साथ-साथ संबंधित व्यक्ति की अह्म पंक्ति के महत्त्व पर भी बल देता है।
4) यह सिद्धान्त प्रणोदन के महत्त्व की अपेक्षा करता है।
5) इस सिद्धान्त में मूल्यांकन आशंका के महत्त्व की अपेक्षा की गयी है। अतः यह सिद्धान्त भी सभी परिस्थितियों में घटित सामाजिक सरलीरकरण की व्याख्या संतोषजनक ढंग से नही कर पाता है।

9.5 सामाजिक श्रमावनयन

समूह का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक सरलीकरण के साथ-साथ सामाजिक श्रमावनयन के रूप में भी देखी जाता है। जब समूह के सदस्यों की उपस्थिति में व्यक्ति के कार्य करने का स्तर ऊँचा हो जाता है तो इसे सामाजिक सरलीकरण कहा जाता है। इसके विपरीत जब दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति को कार्य करने का स्तर नीचा हो जाता है। तो इसे सामाजिक श्रमावनयन कहा जाता है।

बेरोन विर्ने ने सामाजिक रमावनयन को परिभाषित करते हुए कहा है सामाजिक श्रमावनयन का तात्पर्य व्यक्ति के कार्य करने के प्रेरणा तथा प्रयास के उस हास से है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत रूप से अकेले या स्वतंत्र सहकर्ताओं के रूप में कार्य करने की अपेक्षा समूह में सामूहिक रूप से कार्य करने पर घटित होता है। इस परिभाषा के आलोक में सामाजिक रमावनयन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का पता चलता है-

1. सामाजिक श्रमावनयन की घटना तब घटती है जबकि व्यक्ति समूह में सामूहिक रूप से कार्य करता होता है।

2. सामाजिक श्रमावनयन की घटना अकेले में काम करते समय अथवा स्वतंत्रता सहकर्ताओं के साथ कार्य करते समय घटित नहीं होती है।
3. जब व्यक्ति समूह में कार्य करता होता है तो उसके कार्य करने की प्रेरणा एवं प्रयास में अकेले कार्य करने या स्वतंत्र सहकर्ताओं के साथ करने की अपेक्षा हास घटित होता है।

9.6 सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ

(1) सम्मिलित सामूहिक क्रिया–सामाजिक श्रमावनयन की एक विषेशता यह है कि इसका संबंध सम्मिलित सामूहिक क्रिया से होता है। दूसरे शब्दों में सामाजिक श्रमावनयनके घटित होने के लिए सम्मिलित सामूहिक क्रिया का होना अनिवार्य है। सम्मलित सामूहिक क्रिया का अर्थ है वह क्रिया या का होना अनिवार्य है। सम्मिलित सामूहिक क्रिया का अर्थ है वह क्रिया या कार्य जिसमें समूह के सभी सदसय अपने आप को सम्मिलित समझते हों।

(2) वैयक्तिक प्रयास हास–सामाजिक श्रमावनयन की एक मुख्य विषेशता वैयक्तिक प्रयास का हास है। समूहपरिस्थिति में प्रत्येक सदसय का प्रेरणा स्तर गिर जाता है, जिस कारण उसका व्यक्तिगत कार्य-स्तर निम्न बन जाता है क्योंकि अन्य लोगों की उपस्थिति में सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने का सामाजिक दबाव कमजोर हो जाता है।

(3) निवैयक्तिता–सामाजिक श्रमावनयन की एक विषेशता है कि इसमें व्यक्ति अपनी वैयक्तिा खो देता है। अकेले में कार्य करते समय उसे अपनी वयैक्तिा की पहचान की जागरूकता रहती है, परन्तु समूहपरिथिति में यह जागरूकता ढीला पड़ ताजा है।

(4) वैयक्तिक उत्तरदायित्व की कमी–सामाजिक श्रमावनयन की एक विषेशता यह है कि समूह का प्रत्येक सदस्य अपने दायित्व के प्रति ढीला पड़ जाता है। अकेलापन में वह अपने आप को किया कार्य की सफलमता या विफलता का उत्तरदायी मानता है जब कि समूहपरिस्थिति में यह उत्तरदायित्व ढीला पड़ जाता है।

(5) वचनबद्धता हास– सामाजिक रमावनयन की एक विषेशता सदस्य की वचन बद्धता में हास है। इसी हास के कारण समूहपरिथिति में प्रत्येक सदस्य समूहलक्ष्य के प्रति ढीला पड़ता है। जिससे प्रत्येक क वैयक्तिक निष्पादन मेंहास होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक रमावनयन की कई विशेषताएँ है।

9.7 सामाजिक श्रमावनयन के कारण

प्रश्न है कि सामाजिक श्रमावनयन की घटना क्यों घटती है ? व्यक्ति का निष्पादन समूह परिस्थिति में क्यों घट जाता है। इस संदर्भ में किए गए अध्ययनों से निम्नलिखित कारणों का संकेत मिलता है।

(1) **विभाजित उत्तरदायित्व का भाव**–सामाजिक श्रमावनयन का एक मुख्य कारण सदस्यों में समूहलक्ष्य के प्रति विभाजित उत्तर दायित्व का भाव है। प्रत्येक सदसय अपने समूह के लक्ष्य के प्रति अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी नहीं समझता है जबकि अकेले कार्य करते समय वह अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी समझता है जब कि अकेले कार्य करते समय वह अपने आप को पूर्णतः उत्तरदायी समझता है समूह परिस्थिति में इसी विभाजित उत्तरदायित्व के कारण प्रत्येक सदस्य का प्रेरणा स्तर तथा निष्पादन स्तर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक श्रमावनयन घटित होता है।

(2) **निम्न प्रेरणात्मक स्तर**–सामाजिक श्रमावनयन का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है कि जब व्यक्ति अकेला काम करता होता है तो उसका प्रेरणात्मक स्तर ऊँचा होता है, क्योंकि अच्छे निष्पादन का पूरा श्रेय उसे ही मिलता है । दूसरी और समूह परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणात्मक स्तर निम्न बन जाता है, क्योंकि उसे इस बात का एहसास रहता है कि अच्छे निष्पादन या परिणाम का श्रेय व्यक्तिगत रूप से उसे नहीं मिलेगा। फलतः उसका व्यक्तिगत कार्य स्तर गिर जाता है।

(3) **व्यक्तिगत हानि रहित**–सामाजिक रमावनयन का एक कारण यह भी है कि समूह परिस्थिति में होने पर व्यक्ति को इस बात का भय नहीं रहता है कि समूह निष्पादन के असंतोषजनक होने की स्थिति में उसे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जायगा या इसके लिए उसे दण्डित किया जायेगा इसलिए वह अधिक प्रयास नही करता है। फलतः कार्य स्तर निम्न बन जाता है। दूसरी ओर अकेले कार्य करते होने पर उसे इस बात का बोध रहता है कि निष्पादन के कम होने पर उसे हानि हो सकती है। इसलिए वह अपने कार्य के प्रति सदा प्रेरित एवं सक्रिय रहता है।

(4) **दूसरों का प्रत्यक्षण**–जब समूह का कोई सदसय उस समूह के दूसरे सदस्य या सदस्यों का प्रत्यक्षण करता है और यह पाता है कि दूसरे लोग कम योग्य है अथवा योग्य होने पर भी पूरे लगन के साथ काम नहीं करते है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव उस सदस्य पर पड़ता है और भी अपने दायित्व के प्रति ढीला पड़ जाता है जिससे उसका व्यक्तिगत निष्पादन घट जाता है।

(5) **वैयक्तिक उत्तरदायित्व का आभाव**–सामाजिक श्रमावनयन का एक मूल कारण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अभाव है। समूह का प्रत्येक सदस्य यह महसूस करता है कि समूह के अच्छी या बूरी उपलब्धि का उत्तरदायी उसे नहीं माना जा सकता है। इसलिए अपने परिणाम के इस ज्ञान से सदस्य का व्यक्तिगत प्रेरणा स्तर गिर जाता है। और समूहपरिस्थिति में होने वाला निष्पादन - स्तर अकेले में होने वाले निष्पादन की तुलना में गिर जाता है।

9.8 सामाजिक रमावनयन को कम करने की प्रविधियाँ या उपाय

सामाजिक श्रमावनयन को कम करने के लिनम्नलिखित उपाय या विधियाँ है-

1) समूहलंक्ष्य के प्रति प्रत्येक सदसय के प्रयास की पहचान - सामाजिक रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूहलक्ष्य के प्रति प्रत्येक सदस्य द्वारा किए प्रयास की पहचान की जा सके। ऐसा होने पर समूहपरिस्थिति में थी प्रत्येक सदसय अपने दायित्व को निभाने के लिए पूरी तरह सक्रिय एवं प्रेरित रहेगा, जिस तरह वह अकेले में कार्य करते समय रहता है ऐसी हालत में सामाजिक रमावनयन बहुत हद तक कम को जाता है। इस दिशा में किए गए प्रयोगों से भी इसका प्रमाण मिलता है।
2) समूह कार्य को चुनौतीपूर्ण बनाना - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूह कार्य को यथासंभव चुनौतीपूर्ण बना दिया जाए। ऐसी स्थिति में समूह का प्रत्येक सदसय अपने -अपने तौर पर अधिक सक्रिय होकर कार्य करने के लिए उत्प्रेरित होता रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि सामाजिक रमावनयन बहुत अंशों तक कम हो जायेगा। इस संदर्भ में जैकसन तथा हारकिंस का अध्ययन इस बात का साक्षी है कि समूह कार्य को चुनौतीपूर्ण बना देते पर सामाजिक श्रमावनयन में भारी कमी आ जाती है।
3) वैयक्तिक उत्तरदायित्व के प्रति बोध - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने की एक कारगर विधि यह है कि समूह के सदसयों को उपयुक्त माध्यम से अपने वैयक्ति उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बनाया जाए। अध्ययनों से पता चलता है कि जब समूह के सदस्य अपने वैयक्तिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रहते हैं तो सामाजिक श्रमावनयन में स्वतः भारी कमी आ जाती है।
4) सामानय लक्ष्य के प्रति वचनबद्धता - सामाजिक श्रमावनयन को कम करने का एक उपाय यह है कि समूह के प्रत्येक सदस्या का सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रति वचनबद्ध बनाने का प्रयास किया जाए। जानकारों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि समूह के सदस्य जिस हद तक अपने लक्ष्य के प्रति वचनबद्ध रहते हैं, उनमें सामाजिक श्रमावनयन उसी हद तक कम होता है।

कारो एवं विलियम्स ने अपने अध्ययनों के आलेक में निष्कर्ष के रूप में कहा है कि सामाजिक रमावनयन निम्नलिखित परिस्थिति में बिलकुल दुर्बल बन जाता है।:-

i. जब लोग बडे समूह की अपेक्षा छोटे समूह में काम करते है।
ii. जब वे ऐसे कार्यों को करते है जो तात्विक रूप से रोजक या उनके लिए महत्वपूर्ण होते हैं।
iii. जब वे मित्रों, टीम - साथियों तथा अन्य प्रतिशिठत व्यक्तियों के साथ काम करते है।
iv. जब वे महसूस करते है कि उनका योगदान अपूर्व या महत्वपूर्ण है।
v. जब वे सहैसूस करते है कि उनके साथ काम करने वाले बहुत खराब काम कर रह है।
vi. जब वे देखते है कि समूह उत्पाद के लिए उनका योगदान अपूर्व तथा महत्वपूर्ण है।
vii. जब वे ऐसी संस्कृति से सम्बद्ध होते हैं जिसमें समूह कार्य की अपेक्षा वैयक्तिक कार्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

9.9 जनसंकुलन

जनसंकुलन का अर्थ:- जनसंकुलन एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है जिसके माध्यम से समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाल समूह प्रभावों का अध्यययन किया गया है। सामान्यतः जनसंकुलन से तात्पर्य कम जगह मे अधिक लोगों के एकत्रित हो जाने से उत्पन्न स्थिति से होता है स्पष्टतः जगह तथा व्यक्तियों की संख्या के साथ जनसंकुलन को यहॉ जोड़ा गया है । परतु वास्तविकता यह है। कि जनसंकुलन की वैज्ञानिक परिभाषा में जगह तथा व्यक्तियों की संख्या को महत्त्व नहीं दिया जाता है। व्यक्ति एक बस में होने पर जनसकुंलन से की वैज्ञानिक परिभाषा में जगह तथा व्यक्तियों की संख्या को महत्त्व नहीं दिया जाता है। व्यक्ति एक बस में होने पर जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है परंतु बस के जगह के बाराबर वाले किया कमे मतें सुवयवस्थित की गयी पार्टी में ऐसा अनुभव नहीं कर सकता है। उसी तरह से व्यक्ति किया सटेडियम में बैठे 50,000 हजार व्यक्तियों के बीच होने पर भी जनसकुलन का अनुभव नही कर सकता है अगर उस स्टेडियम में दो लाख लोगों की बैठने की क्षमता है इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है जनसंकुलन सा सही परिभाषा में जगह तथा लोगों की संख्या का महत्त्व नहीं होता है। सटोकोल्स का मत है कि जनसकुलन को सही अर्थ में समझने के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध जगह तथा व्यक्तियों की संख्या दोनों की प्रति व्यक्ति की मानव

वैज्ञानिक अनुभूति को जानना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में तब जनसंकुलन तथा उसे संबंधित पद घनत्व के अंतर को समझना अति आवश्यक है घनत्व से तात्पर्य परिस्थिति के भौतिक एवं स्थानिक पहलुओं से होता है अर्थात प्रति स्थानिक इकाई में व्यक्तियों की संख्या से होती है। प्रति स्थानिक इकाई व्यक्तियों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, घनत्व उतना ही अधिक होगा। जनसंकुलन से तात्पर्य व्यक्ति की संख्या के बारे में सोचना है। दूसरे शब्दों में जनसंकुलन प्रति व्यक्ति उपलब्ध स्थान को छोटा या कम समझने से होता है। यह व्यक्ति का एक ऐसी मेनोवैज्ञानिक अवस्था है जो घनत्व से सीधे साहचर्यित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है अजसंकुलन की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषा इस प्रकार दी गयी है।

स्टोकोल्स:- के अनुसार स्थानिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत कारकों की अन्तः क्रियाओं से उत्पन्न अभिप्रेरणात्मक अवस्था को जनसंकुलन कहा जाता है।

वर्केल तथा कूपर के अनुसार ‘‘ जनसंकुलन व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक या आत्मगत कारकों से होता है- किसी विशेषस्थान में व्यक्तियों की दी गयी संख्याओं को व्यक्ति किस तरह प्रत्यक्षण करता है।’’

फैल्डमैन के अुनसार:- जनसंकुलन से तात्पर्य एक परिस्थिति में उत्पन्न मनोवैज्ञानिक या आत्मगत कारकों से होता है। किया विशेषस्थान में व्यक्तियों की दी गयी संख्याओं को व्यक्ति किस तरह प्रत्यक्षण करता है।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें जनसंकुलन के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

1) जनसंकुलन का संबंध व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक अनुभूति से होता है न कि परिस्थिति के भौतिक एवं स्थानिक हालातों से व्यक्ति किया संगीत प्रोग्राम को देख रह एक लाख जनसमूह के बीच होकर भी जनसंकुलन का

अनुभव नहीं कर सकता है परंतु पुस्तकालय में अगल-बगल में बैठे तीन- चार आदमियों की उपस्थिति से ही जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है। जनसंकुलन एक नकारात्मक मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया है क्योंकि ऐसी अनुभूति तनाव उत्पनन करने वाली होती है।

2) जनसंकुलन घनत्व से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है।

3) जनसंकुलन में व्यक्ति उपलब्ध स्थान में उपस्थित व्यक्तियों की संख्या का विशेषढंग से प्रत्यक्षण करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने वैसी परिस्थितियों का विशेषरूप से अध्ययन किया है जिसमें मानव घनत्व अधिक था । इन लोगों का सामान्य निष्कर्ष यह रहा है कि ऐसी परिस्थिति व्यक्ति में उत्तेजना उत्पन्न करती है। मनोवैज्ञानिकों ने यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है ऐसी परिस्थिति में उत्तेजित होने का परिणाम कया होता है ? इन प्रश्न के दो उत्तर यह है कि घनत्व व्यक्ति में मौजूद प्रवृत्ति चाहै उच्छी हो या बुरी, उसे तीव्र कर देता है तथा दूसरा उत्तर यह है कि घनत्व का प्रभाव अधिकतर नकारात्मक ही होता है। इन दोनों उत्तरों को हम अलग-अलग अनुच्छेद में वर्णन करेंगें।

(i) **घनत्व - तीव्रता:-** घनत्व - तीव्रता नियम के अनुसार जनसंख्या या सामाजिक घनत्व में वृद्धि होने से उस परिस्थिति के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया में वृद्धि होती है इस नियम के मुख्य समर्थक फ्रीडमैन है इनका मत है कि अगर व्यकित की प्रतिक्रिया जनसंख्या या सामाजिक घनत्व के प्रति पहले से धनात्मक होती है, ऐसी धनत्व से उसमें सकारात्मक अनुक्रिया की संख्या में वृद्धि हो जाएगी या ऐसी अनुक्रियाएँ और तीव्र हो जाएगी। दूसरे तरफ यदि व्यक्ति की प्रतिक्रिया जनसंख्या या सामाजिक धनतव के प्रति पहले से नकारात्मक है, तो ऐसी घनत्व में वृद्धि होने से व्यक्ति के नकारात्मक अनुक्रियाएँ और तीव्र हो जाएगी। यही कारण है कि जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी अपने बच्चों के साथ सर्कस देखने जाता है तो वहॉं एकत्रित लोगों की संख्या में वृद्धि होन से घनत्व पहले से धनात्मक होती है। परन्तु वहॉ वढती भीड़ से उस व्यक्ति में नकारात्मक अनुक्रियाएँ पहले से और भी तीव्र हो जाएँगी क्योंकि उसकी अपनी इच्छा सर्कस देखने का नहीं था। कई प्रयोगों से भी घनतव - तीव्रता नियम की संपुष्टि हो पायी है स्किफेनवाऊर तथा स्कियाभो तथा स्ट्रौम्स एवं थामस ने अपने - अपने अध्ययनों में पाया कि ऐसे लोग जिनमें आप में दोस्ताना संबंध था, जब एक - दूसरे के प्रति पहले से अधिक अप्रसन्नता व्यक्त करते पाये गएं। फ्रीडमैन तथा उनके सहयोगियों ने भी अपने प्रयोग में उक्त तथ्य का समर्थन किया है इस तरह से घनत्व - तीव्रता अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे लोगों की उपस्थिति से व्यक्ति की वर्तमान अनुक्रियाएँ तीव्र हो जाती है इभान्स ने भी इस तथ्य को अपने प्रयोग से समर्थन प्रदान किया है।

(ii) **घनत्व प्रभाव:-** घनत्व प्रभाव अधिकतर नकारात्मक होते हैं। जनसंख्या घनत्व या सामाजिक घनत्व के बारे मे समाज मनोविज्ञनिको के बीच दूसरी विचारधारा यह है कि सामाजिक घनत्व सिर्फ उत्तेजन ही उत्पन्न नहीं करता है। बल्कि यह तनाव भी उत्पन्न करता है अर्थात इसका प्रभाव नकारात्मक भी होता

है इपस्टीन तथा उनके सहयोगियों द्वारा किय गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक घनत्व में वृद्धि होन से व्यक्ति व्यक्तिगत स्थान पर अतिक्रमण प्रतिवंधित व्यवहार तथा उददीपन अतिभार आदि जैसे नकारात्मक अनुभूतियाँ होती है जिनका सपष्टतः नकारात्मक परिणाम होता है। इन परिणाम व्यक्तिगत नियंत्रण में कमी होना है जिससे व्यक्ति में कुंठा तनाव तथा अन्य घातक अनुभूतियाँ होती है। स्पष्ट हुआ कि घनत्व में वृद्धि का प्रभाव अधिकतर नकारात्क ही होते हैं। इस तथ्य के समर्थन में मनुष्यों तथा पशुओं दोनों पर प्रयोग किये गए है तथा उनसे प्राप्त साक्ष्य के आधार पर घटना की संपुष्टि की गयी है कालहोन 1962 तथा क्रिष्चियन1960तथा उनके सहयोगियों ने चूहों तथा हैरिणों पर अध्ययन किये जिसमें यह पाया गया कि जब इन पशुओं को एक सीमित वातावरण में एक साथ रहने के लिए बाध्य किया गया तो उनमें तनावपूर्ण व्यवहार अधिक होते देखे गए। इन लोगों ने अपने इस अध्ययन में देखा कि ऐसी परिस्थिति में पशुओं में असामान्य लैंगिक व्यवहार, उग्र तथा मृत्यु दर में वृद्धि आदि स्पष्ट रूप से पाये गये। कुछ इसी तरह के सबूत मनुश्यों के अध्ययन में भी देखा गया। जैसे - क्रिमेयर ने अपने अध्ययन में पाया कि ऐसे शहरी क्षेत्र जिसमें जनसंख्या का घनत्व अधिक था, उसके वासियों में अपराध की प्रवृत्ति तथा सांवेगिक व्यथा अधिक थी रोडिन 1978 ने अपने अध्ययन में पाया कि ऐसे बच्चे जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है, उनमें व्यक्गित नियंत्रण को दृढ़तापूर्वक व्यक्त नहीं कर पाते है। मिलग्राम तथा न्यमैन 1977 तथा मैककाऊले 1977 ने ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की तुलना (कम जनसंख्या घनत्व) शहरी क्षेत्रों के लोगों (अधिक जनसंख्या घनत्व) से किया और पाया कि शहरी क्षेत्र के लोगों में किया अपरिचित से हाथ मिलाने की प्रवृत्ति अगल-बगल से गुजरने वाल व्यक्तियों से सीधा नेत्र सम्पर्क स्थापित कर बातचीत करने की प्रवृत्ति, तथा जरूरत पड़ने पर दूसरे लोगों को मदद करने की भी प्रवृत्ति कम होती है। पालुस, मैककेन तथा कौक्स 1985 ने कद जैसे वातावरण के सामाजिक घनत्व का व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है। इन लोगों ने कद रिकार्ड का विश्लेषण किया तो पाया कि जैसे - जैसे कद में व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होती गयी, कैदियों में उच्च रक्तचाप, तरह-तरह की बिमारियाँ, आत्महत्या की प्रवृत्ति, उच्च मृत्यु दर तथा अनुशासन से संबंधित समस्याओं में वृद्धि होते गयी । कुछ अध्ययन कालेज छात्रों को रहने के लिए बाध्य किया जाता है तो प्रत्येक छात्र कमरे की क्रियाओं पर व्यक्तिगत नियंत्रण में कमी का अनुभव करते है इतना ही नहीं कार्लिन 1979 तथा ग्लासमैन 1978 ने तो अपने- अपने अध्ययन से तथ्य की भी संपुष्टि किया है कि जब एक ही कमरे में तीन छा्त्र एक साथ रहते हैं तो प्रत्येक को परीक्षा में निम्न उपलब्धि हासिल होती है।

उक्त अध्ययनों के आलोक में हम इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सामाजिक घनत्व में वृद्धि का प्रभाव नकारात्मक ही होता है क्योंकि यह न केवल मनुश्यों में बल्कि पशुओं में भी नकारात्मक अनुभूतियाँ उत्पन्न करता है।

9.10 निवैयक्तिता

वैयक्तिक व्यवहार पर समूह का एक ऐसा भी प्रभाव पड़ता है जिसमें व्यक्ति अपनी वैयक्तिता खो देता है क्योंकि आत्म-अवगतता लगभग समाप्त हो जाती है और वह अपने आप को समूह में पूर्णतः समावेशित कर लेता है। इस स्थिति को फेस्टिंगर, पेपीटोन तथा नयूकाम्ब 1952 ने निर्व्यश्टिकरण की संज्ञा दिया है। उसकी एक उत्तम परिभाषा फिशर 1982 ‘‘ने इस प्रकार दी है निवैयक्तिता एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह में होने पर भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेषके रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि वे (समूह में ही) आप्लावित हो जाते हैं और अपनी वैयक्तिक पहचान खो जाने का अनुभव करते है’’।

फेल्डमैन 1985 ने निवैयक्तिता को इस प्रकार परिभाषित किया है निवैयक्तिता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें आत्म अवगतता की कमी हो जाती है, अन्य लोगों द्वारा नकारात्मक मूल्यांकन का डर में कमी हो जाती है, और परिणामतः व्यक्ति आवेगशील, समाज विरोधी तथा अनादर्श रूप से प्रचलित व्यवहारों को करता पाया जाता है’’।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से हमें निवैयक्तिता के स्वरूप के बारे में निम्नाकित तथ्य प्राप्त होते हैं।:-

1. निवैयक्तिता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है जो विशेषप्रकार की समूहपरिस्थिति खासकर वैसी परिस्थिति जो व्यक्ति में गुमनामी उत्पन्न करता है तथा व्यक्ति के ध्यान को अपने आप से विकर्शित करता है।
2. इसमें व्यक्ति समूह में होते हुए भी अपनी वैयक्तिता से अवगत नहीं होता है अर्थात उसमें आत्म- अवगतता की कमी पायी जाती है।
3. इसमें व्यक्ति को नकारात्मक मूलयांकन का डर नहीं रहता है क्योंकि वह जानता है कि उसकी पहचान संभव नहीं हो जायेगी।
4. निवैयक्तिता के कारण व्यक्ति प्रायः आवेगशील, आक्रमक एवं समाजविरोधी व्यवहार करता पाया जाता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने निवैयक्किता को आक्रमकता का एक प्रमुख कारक माना है ।

स्पष्ट हुआ कि निवैयक्तिकता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें समूह में होते हुए भी व्यक्ति की अपनी पहचान खत्म हो जाती है और इस गुमनामी की आड़ में तरह- तरह के समाज - विरोधी व्यवहार को अंजाम देने में वह तनिक भी मुकरता नहीं है।

निवैयक्तिता को प्रयोगशाला में अध्ययन करने का सबसे पहैला सफल प्रयास जिम्वार्डो 1969द्वारा किया गया। इन्होंने कू क्ल्यूक्स क्लान रैली के मॉडल के आधार पर प्रयोग किया। इस रैली की विषेशता यह है

कि इसके सभी सदस्य सिर से पैर तक लम्बा उजला चोंगा पहनकर प्रदर्षन करते है इनमें किया व्यक्ति विशेषकी पहचान संभव नहीं हो पाती है क्योंकि इनका चेहरा पर उजला जामा लगा होता है। इस प्रयोग में चार कॉलेज छात्राओं को दो अवस्थाओं में रखकर एक महिला को बिजली का शॉक लगाना था। पहली अवस्था में इन चार महिलाओं को एक विशेषप्रयोगशाला कोट पहैना दिया गया तथा चेहरा भी इस तरह से ढँक दिया गया था कि उनकी पहचान न हो सके । अतः यह अवस्था पूर्णतः गुमनामी की अवस्था थी । दूसरी अवस्था में न तो उन्हें किसी प्रकार का कोट पहनाया गया और न ही उनका चेहरा ही ढँका गया। परिणामतः इस अवस्था में उनकी पहचान बिलकुल ही स्पष्ट थी। परिणाम में देखा गया कि गुमनामी की अवस्था में प्रयोज्यों ने अधिक लम्बे समय तक शॉक लगाया। जबकि स्पष्ट पहचान हो जाने की अवस्था में उन्होंने तुलनात्मक रूप से कम समय तक शॉक लगाया। इस परिणाम के आधार पर जिम्वार्डो ने यह स्पष्ट किया कि निवैयक्तिता कुछ विशेषसामाजिक अवस्थाओं जैसे गुमनामी का भाव तथा उत्तर दायित्व का विसरण से उत्पन्न होती है। ये दोनों कारक प्रयोग की पहली अवस्था में थी। प्रयोज्यों में गुमनामी का भाव तो था ही साथ ही साथ कोन कितना मात्रा में बिजली शॉक लगा रहा है, इसकी भी कोई स्पष्ट जानकारी नहीं होती थी। जिम्बार्डो का मत है कि निवैयक्तिता की अवस्था विकसित होने पर व्यक्ति में आंतरिक परिवर्तन जैसे आत्म बोध में कमी तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं पर कम से कम सोचना आदि होता है। इन सब का समग्र प्रभाव यह होता है कि ऐसे व्यक्ति विभिन्न तरह के आवेगशील व्यवहार करने की प्रतिबंधता में कमी आ जाती है।

जिम्वार्डो के प्रयोग के परिणाम यद्यपि निर्वैयक्तिता के सिद्वान्त का समर्थन करता है, परंतु फिर भी अन्य प्रयोगकर्ताओं जैसे- डाइनर, 1980 प्रेंटिस-डन तथा रोजर्स 1983 तथा प्रेटिस डन तथा स्पाईवी 1986 के प्रयोगों से थोड़ा भिन्न तस्वीर सामने आयी है। इन लोगों के प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ है कि निववैयक्तिता को समझने के लिए आत्म- बोध में होने वाले परविर्तन पर ध्यान देना होगा। वास्तव में आत्म- बोध के दो भिन्न प्रकार है और निर्वैयक्तिता में इन दोनों भूमिका अलग-अलग है। ये दो तरह के आत्म- बोध है। गुप्त आत्म बोध तथा सार्वजनिक आत्म बोध। गुप्त आत्म बोध से तात्पर्य अपने भीतर झाँकने की प्रवृत्ति से अर्थात अपनी अनुभूतियों भावों एवं मनोवृत्तियों को समझने से होता है। सार्वजनिक आत्म-बोध से तात्पर्य इस ख्याल या अनुभूति से होता है कि हम दूसरों के नजर में कैसा दिखते है। प्रेटिस-डन तथा रोजर्स 1982-1983 द्वारा किये गए षोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब व्यक्ति के निजी आत्म बोध में कमी आती है तो निवैयक्तिता की अवस्था उत्पन्न होती है। इस ढंग की कमी या परिवर्तन प्रायः समूह में होने के कारण व्यक्ति के उत्तेजन स्तर में वृद्धि से तथा समूहसमग्रता की भाव आदि से उत्पन्न होता है। इन कारणों से व्यक्ति में निवैयक्तिक अवस्था की उत्पत्ति होती है और तब व्यक्ति तरह - तरह के आवेगशील व्यवहार तथा अवांछित व्यवहार करने लगता है। दूसरे तरफ जब व्यक्ति के सार्वजनिक आत्म- बोध में कमी होती है जो प्रायः गुमनामी तथा अन्य संबंधित कारकों से उत्पन्न होती है, तो इसका प्रभाव कुछ उस ढंग का नहीं होता है। इनसे भी आवेगशील एवं अनियंत्रित व्यवहार व्यक्ति में अवश्य होता है। परंतु ऐसा

व्यक्ति के इस विश्वास के कारण करता है कि उन्हें अपने इस कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में निवैयक्किता की काई भूमिका नहीं होती है।

निष्कर्ष- यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में निवैयक्किता की उत्पत्ति एक प्रमुख समूह प्रभावों में से है और इसकी उत्पत्ति का संबंध निजी आत्मा - बोध में कमी से है। दूसरे शब्दों में वे सारे कारक जो व्यक्ति को अपनी मानोवुत्ति, भावों एवं मूल्यों पर ठीक ढंग से ध्यान देने में बॉधा पहुँचाते है, उन्हें कुछ इस ढंग से समूह में व्यवहार करने के लिए वाध्य करते है कि उनका व्यवहार एकांत परिस्थिति में किये गए व्यवहार से निश्चित रूप से भिन्न हो जाते हैं। स्पष्टतः तब यह एक प्रमुख तरीका है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार पर समूह का प्रभाव पड़ता दिखता है।

9.11 सारांश

- सामाजिक सरलीकरण को व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाली एक प्रमुख प्रभाव बतलाया गया है मनुश्यों तथा पशुओं पर किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि अन्य लोगों की उपस्थिति चाहैऐ निश्क्रिय या सक्रिय, निष्पादन में उत्कृष्टता आती है इसे ही सामाजिक सरलीकरण कहा जाता है। इसकी व्याख्या सिद्धान्त द्वारा की गयी है।
- समाजिक श्रमानवयन से तात्पर्य व्यक्तियों की उस प्रवृत्ति से होता है जिसमें वे किया सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कार्य करने पर उसी कार्य के लिए अकेले उत्तरदायी होने की अपेक्षा का कम प्रयास करते है। इस का भी व्यक्ति व्यवहार पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।
- जनसंकुलन एक प्रमुख समूहप्रभाव है जिसमें व्यक्ति में एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न होती है। जो जनसंख्या की घनत्व से प्रत्यक्षण रूप से सम्बन्धत हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता इस में व्यक्ति कुछ व्यक्तियों के बीच में भी रह कर जनसंकुलन का अनुभव कर सकता है या फिर 50,000 हजार के व्यक्तियों के बीच में भी रहकर जनसंकुलन का अनुभव नही कर सकता।
- निवैयक्तिता एक ऐसा समूहप्रभाव है जिसमें समूह में होने के बावजूद भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेषके रूप में नही देखा जाता है अपितु व्यक्ति अपने आप को समूह में ही आप्लवित पाता है और अपनी व्यक्तिगत पहचान पूर्णतः खो देता है।

9.12 तकनीकी पद

1.	कर्त्तव्य	Obligation
2.	अधिकार	Expectation
3.	निर्वाह	Maintenance
4.	प्रतिमान	Norm

5. मानदण्डों Standards
6. गुप्त आत्मबोध Private selfawareness
7. सार्वजनिक आत्म बोध Public Selfawareness
8. आप्लवित Submerged
9. विसरण Diffusion
10. गुमनामी Anonynity
11. उत्तेजन स्तर Arousal level

9.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही और कौन सा कथन गलत है -

(1) क्या सामाजिक सरलीकरण में दूसरों की उपस्थिति से व्यक्ति में प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न होता है। (सत्य/ असत्य)

(2) सामाजिक सरलीकरण एक कठिन सामाजिक घटना नहीं है। (सत्य / असत्य)

(3) क्या सामाजिक श्रमावनयन में दूसरे लोगों की उपस्थिति में व्यक्ति का कार्य करने का स्तर नीचा हो जाता है। (सत्य / असत्य)

(4) सामाजिक श्रमावनयन का मूल कारण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का होता है। (सत्य / असत्य)

(5) जनसंकुलन व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था होती है जो घनत्व में प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धत दो समस्या है या नहीं भी हो सकता है। (सत्य/असत्य)

(6) क्या सामाजिक घनत्व में वृद्धि का प्रभाव सकारात्मक ही होता है। (सत्य/ असत्य)

(7) क्या निवेयक्तिता एक ऐसी मनो वेज्ञानिक स्थिति है जिससे समूह में होते हुए भी व्यक्ति की अपनी पहचान खत्म हो जाती है। (सत्य / असत्य)

उत्तर: (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5)सत्य (6) असत्य (7) सत्य

9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डा0 अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव: आधुनिक समाज मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- प्रो0 लाल बचन त्रिपाठी: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - हैर प्रसाद भार्गव आगरा।
- डॉ0 मुहैम्मद सुलैमान: उच्चतर समाज मनोविज्ञान - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डॉ0 आर0 एन0 सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डॉ एस0एस0 माथुर: समाज मनोविज्ञान - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित किजिए ? सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या करने के लिए विकसित किये गये विभन्न सैद्धान्तिक विचारधाराओं का वर्णन करे।
2. सामाजिक रमावनयन से आप क्या समझते है? सामाजिक श्रमावनयन के कारणों का वर्णन करे। उसे किस तरह से कम किया जा सकता है।
3. जनसंकुलन क्या है ? जनसंकुलन पर घनत्व तीव्रता प्रभाव का वर्णन करें?
4. निवेयक्तिता से आप क्या समझते है ? प्रयोगात्मक अध्ययनों से निवैयक्तिता की प्रक्रिया पर किस तरह का प्रकाश पड़ता है?
5. लघु उत्तरीय प्रश्न –
   i. सरलीकरण के सिद्धान्त
   ii. सामाजिक श्रमावनयन की विशेषताएँ
   iii. निवैयक्तिता